

श्री सद्गुरुवे नमः

निराकार मन

गुप्त भयो है संग सबके । मन निरंजन जानिये ॥
निराकार जो वेद बखाने । सोई काल कोई मरम न जाने ॥
ज्ञान कथै अरु ज्योति दृढावै । जोति स्वरूप मर्म नहीं पावै ॥
जोति स्वरूप निरंजन राई । जिन यह सकल सृष्टि भर्माई ॥
सुर नर मुनि सबको ठगे, मन ही लिया औतार ।
जो कोई या ते बचे, तीन लोक से न्यार ॥

—सतगुरु मधु परमहंस जी

साहिब



बन्दगी

सन्त आश्रम रांजड़ी, पोस्ट राया, ज़िला साम्बा (जे. एण्ड के .)

निराकार मन

—सतगुरु मधुपरमहंस जी

© SANT ASHRAM RANJRI (J & K)

ALL RIGHTS RESERVED

First Edition	—	Sept., 2011
Copies	—	5000

प्रचार अधिकारी

— राम रतन, जम्मू

Website Address.

www.sahibbandgi.org

www.sahib-bandgi.org

E-Mail Address.

*satgurusahib@sahibbandgi.org

Editor

Sahib Bandgi Sant Ashram Ranjri

Post -Raya, Distt.-Samba (J & K)

Ph. (01923) 242695, 242602

विषय सूची

1. निराकार मन !	5
2. मन की शक्तियाँ	25
3. बीज के शब्द प्रमात्मा नहीं ?	52
4. योगमत और संतमत में अंतर	53
5. मन माया तो एक है	55
6. मेरा नाम निरञ्जन है	91
7. निर्गुण और त्रिगुण रूप मन ही है	112
8. मन की शक्तियों से लड़ने के उपाय	130
9. सद्गुरु कौन ?	140
10. मन के 12 पंथ	146
11. मन का इलाज	148

दो शब्द

सय्याद के काबू में हैं सब जीव बेचारे ।।

एक बार मैंने 'इंडिया टूडे' में एक लेख पढ़ा, जो वर्ष का महावाक्य था। राष्ट्रपति रीगन के पी. ए. एलेक्जेंडर ने वो लेख लिखा था। उसने लिखा था— “मुझे यूँ लगता है कि हम सब धरती पर जीने वाले लोग एक शैतानी ताकत के हाथ में खेल रहे हैं। मुझे लगता है कि हम सबका संचालन एक शैतानी ताकत करती है। वो ताकत जब भी चाहे, धरती पर रहने वाले सभी मनुष्यों की बुद्धि को एक साथ एक ही दिशा में घुमा सकती है। वो ताकत पुरी दुनिया के लोगों के विचार बदल सकती है। मुझे ऐसा लग रहा है, वो शक्ति हम सबको विनाश की तरफ ले जा रही है।”

कितनी ऊँची बात लिखी थी। उसने मंथन किया होगा। मुझे लग रहा है कि उसने साहिब की वाणी पढ़ी होगी। अगर नहीं पढ़ा तो उसे धन्यवाद दूँगा कि इतनी ऊँची बात उसके दिमाग में आ गयी। साहिब तो कह रहे हैं—

मन तरंग में जगत भुलाना ।।

यह सारा संसार मन की तरंगों में बहे जा रहा है, मन के कहे अनुसार संसार में अनात्म कार्य किये जा रहा है। ऐसा इसलिए हो रहा है क्योंकि किसी को भी मन समझ में नहीं आ रहा है। यही मन काल है। यही मन सबको विनाश की तरफ लिए जा रहा है। मन को न समझ पाने से सब अज्ञानवश पाप कर्मों में उलझ गये हैं, क्योंकि यही पाप-कर्म करवा रहा है। मन की ही भक्ति करते हुए सब काल के मुँह में जा रहे हैं, क्योंकि यह सत्य-पुरुष की सत्य भक्ति की तरफ किसी को आसानी से नहीं जाने दे रहा और अपनी ही भक्ति करवा रहा है।

अकथ कथा या मनहि की, कहैं कबीर समुझाय।

जो जाको समझा परै, ताको काल न खाय।।



निराकार मन!

आध्यात्मिक ज्ञान के अन्तर्गत सांसारिक संत-महात्मा हमें यही बता रहे हैं कि 'जीव' शरीर के कर्म बँधन में है। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि महात्मा, पीर, पैगम्बर, औलिया और मनुष्य शरीरों में आने वाले देवी-देवता सभी कर्मबँधन और कर्मफल का ही ज्ञान देते हैं। सभी आत्मा को अज्ञान के कारण आवागमन और बँधनों में फँसी होना बताते हैं। कोई भी मनुष्यों को यह आध्यात्म ज्ञान नहीं देता कि समस्त जीवों को अज्ञान और शरीर के बँधनों में रखने वाला 'निरञ्जन' मन ही है। बैकुण्ठ-स्वर्ग, जन्नत के सुख देने वाला और नर्क-दोजख के दुःख दिलाने वाला तीन लोकों का स्वामी मन ही है। समस्त भय और भ्रमों में रखकर कर्म करवाने वाला एवं कर्मफल देने वाला मन ही है।

परमपुरुष-अंश, अमर हँस आत्मा को वश में करके उसकी ही शक्ति से सब कुछ करने वाला 'मन' ही है। निराकार 'मन' ही परमपुरुष का अमर शब्द-पुत्र है परन्तु परमपुरुष के वरदान का कपटपूर्ण दुरुपयोग कर तीन लोकों का निर्माता और स्वामी है। वरदान के दुरुपयोग और कपट से ही निरञ्जन 'मन' ने हँस आत्माओं को आद्यशक्ति सहित वश में करके अमरलोक से अलग अपना त्रिलोकी राज बनाया है। हँसात्माओं को जीव बनाकर 84 लाख योनियों के जन्म-मरण में उलझाया है। परमपुरुष ने इसी कारण 'निरञ्जन' को श्राप दिया कि वो कभी वापस अमरलोक नहीं आ सकेगा। मन रूप 'निरञ्जन' ने आत्माओं को इसीलिए जीव योनियों के भोग और कर्मबँधनों में बाँधा जिससे जीवात्मा अपने स्वरूप को नहीं जान सके एवं अज्ञान में रहे। हँस-आत्मा शापित नहीं है वह अमरलोक जाने और मोक्ष पाने की अधिकारी है। आत्मा स्वयं मन के अज्ञान से मुक्त होने में समर्थ नहीं है। एक सद्गुरु ही आत्मा को

उसका स्वरूप देकर कालपुरुष रूपी 'मन' के नियंत्रण से मुक्त करने में समर्थ है। आद्यशक्ति भी माया-प्रकृति के शरीर रूपों में मन रूप निरञ्जन की अर्धाग्नि है। ये दोनों मिलकर कभी जीवों को मुक्त नहीं होने देते। आत्मा के इस अज्ञान को केवल सद्गुरु शरण में सत्यनाम पाकर ही जानना सम्भव है। त्रिलोकी ब्रह्माण्डों में अलख-निरञ्जन का ही राज है।

अलख निरञ्जन ही अपने पुत्रों ब्रह्मा से सृजन, विष्णु से पालन और शिव से संहार करवा कर जीवों को कभी अपनी माया से पार नहीं जाने देता। मन-रूप में सब जीवों को अपनी इच्छानुसार कर्म कराता हुआ कर्मफल का विधान रचियता भी यही अलख-निरञ्जन है। बारम्बार सृष्टि प्रलय के पश्चात् सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग की संसार रचना कर मन-रूप में जीवों को भोग, कर्म और भक्ति में यही रखता है। इसी अलख पुरुष निरञ्जन के माया संसार को कबीर-साहिब ने काव्यमयी 'ज्ञान गुदरी' के माध्यम से समझाया है —

मन रूपी अलख पुरुष ने गहन विचार के साथ चौरासी लाख योनियों के धागे में आत्मा को बाँधा है। इन चौरासी लाख धागों की गुदड़ी रूपी शरीरों को पाँच तत्व और तीन गुणों से युक्त बनाया है। परमपुरुष से वरदान प्राप्त इस समर्थ अलख-निरञ्जन ने सृष्टि रचना के खेल संचालन की गुदड़ी में जीव, ब्रह्म और माया को बुना है। शरीरों में आत्मा को सुरति के धागे, शब्द रूपी सुई में डालकर बुद्धि (Brain) डिबिया बनाकर ज्ञान को जोड़ा है। शरीर रूपी गुदड़ी में काम-क्रोध-लोभ-मद और पच्चीस प्रकृतियों को भी धागे में पिरोकर सिया है। साहिब कह रहे हैं सब संत इस काया गुदड़ी के विस्तार और श्रृंगार को ध्यान से देखें। नेत्र रूपी दो सूरज और चाँद के पैबंद भी इस शरीर गुदड़ी में लगे हैं। सद्गुरु की कृपा पाकर जाग जाओ और देखो इस शरीर गुदड़ी को ज्ञान विचार से दाग न लगने दो। व्यर्थ मत गँवाओ। जो भी इस गुदड़ी की रचना पर विचार करेगा उसे ही इसके बनाने वाले से भेंट होगी, वही जानेगा।

हृदय रूपी झोली से क्षमा रूपी खड़ाऊँ पहनकर लगन रूपी छड़ी निकालो, अटूट भक्ति से मेखला के समान अडिग रहकर सुरति की सुमिरनी से सत्यप्रेम का प्याला पियो। इस तरह मन रूपी काल-कलह का नाश होकर ममता-मोह से छूटकारा मिलेगा। सद्गुरु जब सच्चा नाम देते हैं तो इस जगत को ही जंजीर से बाँध देते हैं। शिष्य मुक्त होकर दसम द्वार से निकलकर ग्यारहवें द्वार को पहचान जाता है। पाँचों तत्त्वों, राग-त्याग-वैराग और तिलक आदि के विधानों से मुक्ति मिल जाती है। सद्गुरु के मिलने से मन खुद चकमक के समान मूल ब्रह्म अग्नि प्रकट करने में सहायक हो जाता है।

साहिब इस शरीर रूपी गुदड़ी को सुविचार के साबुन से धोने और कुविचारों के सब मैल को धोने समझा रहे हैं। कह रहे हैं— सहज आसन में धीरज की धुनि से ध्यान को सत्य के सिंहासन पर स्थिर करो। सद्गुरु यही धीरज और ध्यान रूप जोग-कमण्डल हाथों में देकर सुरति की नाभि से जोड़ देते हैं। विवेक की माला बनाकर और देह को धर्मशाला मानकर सदा दया रूप होकर जीवों की सेवा में रहो। मन को मृगछाला की तरह रखकर देह को अपनी वैशाखी बना लो। मन के जोर को खत्म कर उसे अपनी दया पर निर्भर कर दो। स्वाँसों को माला बनाकर अन्तर की शुद्धता से नाम का अजपा-जाप करने वाला ही भेद को जानेगा। इसी तरह संशय, षोक, के भ्रम और पाँच-पच्चीसी प्रकृतियों पर विजय प्राप्त कर नष्ट कर दिया जाता है।

अपने हृदय को दर्पण बनाकर जब सभी दुविधाएं छूट जाती हैं तो शिष्य पक्का बैरागी हो जाता है। शून्य में स्वाँसों को ले जाकर सद्गुरु शब्द अमृत मिलता है। दुनिया के सुख-दुःख की कीच को धोकर सुषुम्ना का त्रिवेणी रूपी घाट भी छूट जाता है। इसप्रकार तन और मन का सच्चा ज्ञान हो जाने पर निर्वाण-पद देखने की क्षमता मिल जाती है। अष्टदल कमल से शून्य अधर ध्यान में योगी अपने आप को पा लेता है।

इंगला और पिंगला स्वाँसा सम होकर सुषुम्ना में समाकर त्रिवेणी संगम बन जाता है। इसी त्रिवेणी में स्व ब्रह्म तत्त्व विचार से बंकनाल में रहकर और मन की चालाकी से सतर्क रहकर शून्य में चढ़ना सद्गुरु देते हैं। शून्य के मानसरोवर की गहराई में जाकर नहाने से संसार के दुःख और मैल छूट जाते हैं। अलख आत्मस्वरूप अर्थात् स्व दर्शन होकर आत्मा की आँखों से परमपुरुष को देखोगे। इस स्थिति में आने पर समस्त अहँकार (कर्म) और दम्भ का नाश हो जाएगा। ऐसे अपने शरीर रूपी घट में प्रकाश का चौक बनाकर सत्यनाम की पूजा करो। सत्यपुरुष के अकह नाम के अलावा अन्य किसी देव को ध्यान में मत लाओ। सोहं रूपी स्वाँसा को ही चन्दन, तुलसी, पुष्प जानकर चित्त से अन्य सब कुछ भुला दो। श्रद्धा रूपी पालना और प्रीत की धूप देकर सद्गुरु के नित्य-सत्य (नूतन) नाम रूप का ही सुमिरन करो।

शरीर रूपी इस गुदड़ी को इसमें स्थित अलेख-अलख आत्मा ने स्वयं ही पहन रखा है। इसी प्रकट देह को आत्मा ने अपना भेष मान लिया है। इस देह गुदड़ी के जाल से कबीर रूपी सद्गुरु साहिब ने जब मुक्त कर दिया तो समस्त सुर-नर-मुनि भी इस मनुष्य देह (गुदड़ी) की चाह करने लगे। सत्यसंगति में रहकर सदा सद्गुरु की दया से ही सब कुछ मिल जाता है। सत्यनाम के स्वाँसों में सुमिरन का यही ज्ञान देकर सद्गुरु भक्तों की इस गुदड़ी रूपी देह को प्रकाशित कर देते हैं। सोहं, स्वाँस को कहते हैं। स्वाँस और सुमिरन का महत्व ही ज्ञान गुदड़ी से बताया है। स्वाँस और सुरति के बीच में ही रहस्य है।

यही ज्ञान गुदड़ी से समझाया है कबीर साहिब ने —

अलख पुरुष जब किया विचारा । लख चौरासी धागा डारा ॥
पाँच तत्त्व से गुदड़ी बीनी । तीन गुनन से ठाढ़ी कीनी ॥
ता में जीव ब्रह्म अरू माया । समरथ ऐसा खेल बनाया ॥
सब्द की सुई सुरति के डोरा । ज्ञान के डोभन सिरजन जोरा ॥

सीवन पाँच पचीसी लागी । काम क्रोध मोह मद पागी ॥
 काया गुदड़ी के विस्तारा । देखो संतों अगम सिंगारा ॥
 चाँद सूरज दोउ पैबंद लागे । गुरु प्रताप सोवन उठि जागे ॥
 अब गुदड़ी की करू हुसियारी । दाग न लगे देखु विचारी ॥
 जिन गुदड़ी को कियो विचारा । तिन ही भेटे सिरजनहारा ॥
 सुमति के साबुन सिरजन धोई । कुमति मैल सब डारो खोई ॥
 धीरज धूनी ध्यान को आसन । सत कोपीन सहज सिंहासन ॥
 जोग कमण्डल गहि लीना । युगति फावरी मुरसिद दीन्हा ॥
 सेली सील विवेक की माला । दया की टोपी तन धर्मशाला ॥
 मेहर मतंगा मत बैसाखी । मृगछाला मनहिं की राखी ॥
 निःचय धोती स्वास जनेऊ । अजपा जपै सो जानै भेऊ ॥
 लकुटी लौ की हिरदा झोरी । छिमा खड़ाऊँ पहिरि बहोरी ॥
 भगति मेखला सुरति सुमिरनी । प्रेम पियाला पीवे मौनी ॥
 उदास कुबरी कलह निबारी । ममता कुतिया को ललकारी ॥
 जगत जँजीर बाँधि जब दीन्ही । अगम अगोचर खिड़की चीन्ही ॥
 तत्त तिलक दीन्हें निरबाना । राग त्याग बैराग निधाना ॥
 गुरु गम चकमक मनसा तूला । ब्रह्म अग्नि परगट करि मूला ॥
 संसय सोग सकल भ्रम जारी । पाँच पच्चीसों परगट मारी ॥
 दिल दरपन करि दुविधा खोई । सो बैरागी पक्का होई ॥
 सुन्न महल में फेरा देई । अमृत रसकी भिच्छा लेई ॥
 दुःख सुख मैल जगत के भावा । तिरबेनी के घाट छुड़वा ॥
 तन मन सोधि भयो जब ज्ञाना । तब लख पायो पद निर्वाना ॥
 अष्टकँवल दल चक्कर सूझे । योगी आप आप में बूझे ॥
 इंगला पिंगला के घर जाई । सुखमन सेज जाय ठहराई ॥
 ओअं सोहँ तत्त विचारा । बँकनाल का किया सम्हारा ॥
 मन को मारि गगन चढ़ि जाई । मानसरोवर पेठि अन्हाई ॥

छूटे कलमल मिले अलेखा । इन नैनन साहिब को देखा ॥
 अहँकार अभिमान बिडारा । घट का चौका करि उजियारा ॥
 अनहद नाद तत्व की पूजा । सत्य पुरुष बिन देव न दूजा ॥
 हित कर चँदन तुलसी फूला । चित्त कर चाउर संपुट भूला ॥
 सरधा चँवर प्रीति कर धूपा । नूतन नाम साहिब कर रूपा ॥
 गुदड़ी पहिरे आप अलेखा । जिन यह प्रगट चलायो भेषा ॥
 सत्य कबीर बकस जब दीन्हा । सुरनर मुनि सब गुदड़ी लीन्हा ॥
 रहै निरन्तर सदगुरु दाया । सत्यसंगति में सब कछु पाया ॥
 कहे कबीर सुनो धर्मदासा । ज्ञान गुदड़ी करो प्रकासा ॥

सात महाशून्य के अँधकार के नीचे आकाश में तीन लोकों और चौदह खण्डों में ब्रह्माण्डों के स्वामी, अलख निरञ्जन ने सूक्ष्म-रहस्यमय ढंग से जीवों को अपने कालपाश में बाँधा है। पाँच तत्वों का शरीर (गुदड़ी) बनाकर उसे चौरासी लाख योनियों (धागों) में डाला। इतना ही नहीं उन शरीरों को प्रत्येक योनि में सत्-रज-तम तीन गुण भी प्रदान किये। जीवन को पाँच विकराल (आयुधों) वृत्तियों काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहँकार और इनकी पच्चीस प्रवृत्तियों के परिवार सहित बाँधा है। निरञ्जन स्वयं 'मन' बनकर 'आत्मा' को घेर कर बैठ गया। इस प्रकार शरीर रूपी गुदड़ी का विस्तार किया। साथ ही तीनों लोक ब्रह्माण्डों की अगम-अपार रचना कर तारे, चाँद और सूर्य जैसे पैवन्द लगाकर संसार का श्रृंगार भी किया। ये सभी निरञ्जन के गुरुत्व प्रभाव से ही उदय, अस्त और विस्तारित होकर नष्ट होते हैं।

परमपुरुष के अमर शब्द पुत्र निरञ्जन को उत्पन्न करने से पूर्व परमपुरुष कैसे थे, साहिब ने वाणी में वर्णन करते हुए **अमरलोक** का भेद बताया—

आरम्भ में परमपुरुष गुप्त थे। कारण और करण निमित्त नहीं थे। कमलपुष्प में विदेह स्वरूप थे परमपुरुष। एक समय मौज में अपने ही अंश इच्छा से उत्पन्न किये और बहुत हर्षित हुए। परमपुरुष ने सर्वप्रथम

एक शब्द प्रकाशा जिससे अद्भुत श्वेत प्रकाश हुआ। उसी अपने अद्भुत प्रकाशमय द्वीप की रचना में परमपुरुष समा गये। वही अद्भुत प्रकाशमय लोक अमरलोक कहाया। उस प्रकाशमय लोक में जिस स्थान पर परमपुरुष का वास अर्थात् सिंहासन हुआ वह पुहुप द्वीप से पहचाना गया। इस प्रकार अमरलोक के अनन्त प्रकाश में अठ्ठासी सहस्र द्वीपों की रचना हुई। उस अद्भूत प्रकाश में परमपुरुष के समाने से वो चेतन हो गया, जीवित हो गया जैसे आत्मा के शरीर में आने पर शरीर चेतन हो जाता है। उस अद्भुत प्रकाश में समाने पर ही 'सत्यपुरुष' कहलाये। अतः वह अद्भुत प्रकाशमय लोक स्वयं सत्यपुरुष ही हैं वही अमरलोक है। अमरलोक के प्रकाश का एक-एक कण करोड़ों सूर्यों को भी लज्जा दे इतना अद्भुत और सुखसागर है।

उस अद्भुतप्रकाशमय लोक में भी सत्यपुरुष मात्र ही थे। फिर उनकी मौज हुई और उन्होंने उस प्रकाश को अर्थात् अपने ही स्वरूप को अपने में से छिटक (उलीच) दिया। ... इससे प्रकाश की असंख्य बूँद उत्पन्न हुई और ऊपर उछल कर बिखर गईं। जिस प्रकार समुद्र में से पानी हाथों में भरकर उछालने से कई जल-कण बिखर जाते हैं, उसी तरह उस परमसत्य प्रकाश में अनन्त कण बिखर गए। वे अनन्तकण भी वापस प्रकाश में आए लेकिन उसमें समाये नहीं जैसे समुद्र की बूँदें तो पुनः समुद्र में गिरकर एकरूप हो जाती हैं, समुद्र हो जाती हैं। क्योंकि सत्यपुरुष ने इच्छा की कि इनका अलग अस्तित्व भी रह जाए। वे ही 'हँस' (आत्मा) कहलाए और उसी अद्भुत प्रकाश में आनन्दमय विचरण करने लगे।

सत्यपुरुष जब गुप्त रहाये। कारण करण नहीं निरमाये॥
समपुट कमल रह गुप्त सनेहा। पुहुप माहिं रह पुरुष विदेहा॥
इच्छा कीन्ह अंश उपजाये। हँसन देख हरष बहु पाये।
प्रथमहिं पुरुष शब्द परकाशा। दीप लोक रचि कीन्ह निवासा॥

चारि कर सिंहासन कीन्हा । तापर पुहुप दीपकरू चीन्हा ॥
 पुरुष कला धरि बैठे जहिया । प्रगटी अगर वासना सहिया ॥
 सहस अठासी दीप रचि राखा । पुरुष इच्छा तै सब अभिलाषा ॥
 सबै द्वीप रहु अगर समायी । अगर वासना बहुत सुहायी ।

आत्माओं का उस सत्यस्वरूप-प्रकाश में अलग अस्तित्व के साथ विचरण करना बड़ा अचरजमय था, क्योंकि समुद्र की बूँदों का समुद्र में अपना अलग अस्तित्व नहीं होता है । जिस प्रकार पानी में मछली घूमती रहती है, उसी तरह सभी हँस (आत्मायें) उस अद्भुत प्रकाश में विचरण करते हुए परमानन्द में वास कर रहे थे । इसके बाद परमपुरुष ने शब्दों से पुत्र उत्पन्न किये अर्थात् जो बोल रहे थे वो बन रहा था । जैसे ही परमपुरुष ने इच्छा करके दूसरा शब्द पुकारा तो उससे 'कूर्म' उत्पन्न हुआ और पुरुष चरणों में आशा धारण की ।

दूजे शब्द जु पुरुष परकासा । निकसे कूर्म चरण गहि आसा ॥

तीसरे शब्द के उच्चारण से 'ज्ञान' देने वाला ज्ञानपुत्र उत्पन्न हुआ । ज्ञान को पुरुष का ही द्वीप मिला और सदा पुरुष चरणों के सामने निवास है ।

तीजे शब्द भयेजु पुरुष उच्चार । ज्ञान नाम सुत उपजे सारा ॥

टेकी चरण सम्मुख हैं रहेऊ । आज्ञा पुरुष द्वीप तिन्ह दएऊ ॥

चौथे शब्द से 'विवेक' नाम पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका परमपुरुष द्वीप में ही वास है ।

चौथे शब्द भये पुनि जबही । विवेक नाम सुत उपजे तबहीं ॥

आप पुरुष किये द्वीप निवासा । पंचम शब्द सो तेज परकासा ॥

पाँचवां शब्द कुछ तेज आवाज से उत्पन्न पुत्र 'निरञ्जन' हुआ जिसका अंग अति तेज से भर गया । यही निरञ्जन बाद में जीवात्मा को सताने वाला काल निरञ्जन कहलाया । सभी पुत्र परमपुरुष ने इच्छा करके उत्पन्न किये, परन्तु 'हँस' (आत्मा) इच्छा से नहीं बने, वे परमपुरुष का अंश है । इसलिए आत्मा का कोई आदि-अंत नहीं है ।

पाँचवा शब्द जब पुरुष उच्चार। काल निरञ्जन भौ औतारा ॥
तेज अंगते काल है आवा। ताते जीवन के संतावा ॥
जीवन अंश पुरुष का आहीं। आदि अंत कोउ जानत नहीं ॥

छटवां इच्छा शब्द परमपुरुष मुख से होने पर 'सहज' नाम पुत्र उत्पन्न हुआ जो परम-अभिलाषा रूप है।

छठाँ शब्द पुरुष मुख भाषा। प्रगटे सहज नाम अभिलाषा ॥

सातवें शब्द से 'संतोष' नाम पुत्र का भी पुरुष द्वीप में वास हुआ। परमपुरुष के आठवें शब्द से 'सुरति' नाम पुत्र हुआ जिसका सुभाव-द्वीप वास हुआ।

आठाँ शब्द पुरुष उच्चार। सुरति सुभाव दीप बैठारा ॥

नवम शब्द से 'आनन्द' नाम पुत्र आनन्द का स्रोत हुआ। दसवें शब्द से 'क्षमा' नाम पुत्र क्षमा का स्रोत बना।

नवमें शब्द अनन्द अपारा। दशाँ शब्द क्षमा अनुसारा ॥

फिर ग्यारहवें शब्द से 'निष्काम' नाम पुत्र उत्पन्न हुआ और बारहवें शब्द से 'जलरंगी' नाम पुत्र हुआ।

ग्यारहँ शब्द नाम निष्कामा। बारहँ शब्द सुत जलरंगी नामा ॥

तेरहवाँ शब्द पुत्र 'अचिन्त' नाम हुआ। चौदहवाँ शब्द पुत्र 'प्रेम' नाम कहलाया।

तेरहँ शब्द अचिन्त सुत जानो। चौदहँ शब्द सुत प्रेम बखानो ॥

पन्द्रहवाँ शब्द पुत्र 'योग संतायन' और सोलहवें शब्द से 'धीर्य' नाम पुत्र अमृत रूप है।

पन्द्रहँ शब्द सुत दीन दयाला। सोलहँ शब्द भै धीर्य रसाला ॥

सोलहों शब्द सुत योग संतायन। एक नाल षोडश सुत पायन ॥

ऐसे परमपुरुष ने सोलह संतानों का योग 'सुरति' की एक ही नाल में पिरोया है। शब्द से ही परमपुरुष ने पुत्र उत्पन्न किये और शब्द से ही अमरलोक के द्वीपों की रचना की। हरेक द्वीप पर अंशों को स्थान दिया

और सब उस अमृत (परमपुरुष के स्वरूप) का पान करने लगे। अंशों की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता; वहाँ सदा आनन्द रहता है। सभी अंश परमपुरुष के प्रकाश से प्रकाशमय हैं। सत्यपुरुष का रोम-रोम का प्रकाश करोड़ों चन्द्र-सूर्यों के बराबर एक रोम हैं।

द्वीप करि को अनन्त सोभा, नहिं बरनत सो बनै।
अमिय कलां अपार अद्भूत, सुतन शोभा को गनै॥
पुरुष के उजियार से सुत, सबै द्वीप उजियार हो।
सत्पुरुष रोम प्रकाश एकहि, चन्द्र सूर्य करोर हो॥

पाँचवें शब्द पुत्र निरञ्जन का छल

सत्यलोक आनन्द का धाम है; वहाँ दुःख, मोह, शोक, आदि नहीं है; वहाँ हँस सत्यपुरुष के अमृत का पान करते हैं।

सत्पुर आनन्द धाम, सोक मोह दुःख तहँ नहीं।
हँसन को बिसराम, पुरुष दरस अँचवन सुधा॥

सम्पूर्ण हँसों सहित 16 शब्द पुत्रों के अनन्त आनन्द से अलग होकर पाँचवें शब्द पुत्र निरञ्जन ने तमासा किया। सृष्टि का धर्मराज बनने के पहले उसने 70 युग तक एक पैर पर खड़े होकर एकाग्रचित्त से परमपुरुष का ध्यान किया। निरञ्जन के कठिन तप ध्यान से परमपुरुष ने हर्षित होकर पूछा इतनी घोर सेवा-तप क्यों कर रहे हो तो निरञ्जन ने शीश नवाकर स्वयं के रहने अलग एक स्थान देने कहा। परमपुरुष ने कहा हे पुत्र, तुम 'मानसरोवर' द्वीप में जाकर रहो।

यहि बहुत दिवस गयो बीती। ता पीछे ऐसी भई रीति॥
धर्मराय अस कीन्ह तमासा। सो चरित्र बूझहु धर्मदासा॥
युग सत्तर सेवा तिन कीन्हा। इक पग ठाढ़ पुरुष चित दीन्हा॥
सेवा कठिन भाँति तिन कीन्हा। आदि पुरुष हर्षित होय चीन्हा॥
पुरुष अवाज उठी तब बानी। कहा जानि तुम सेवा ठानी॥

कहै धरम तब सीस नमायी। देहु ठोर जहँ बैठों जायी ॥

आज्ञा किये जाहु सुत तहवाँ। मानसरोवर दीप है जहवाँ ॥

मानसरोवर में आकर निरञ्जन बहुत प्रसन्न हुआ। आनन्दमय हुए निरञ्जन ने पुनः एक पैर पर खड़े होकर 70 युग तक परमपुरुष का ध्यान किया। परमपुरुष के हृदय में दया आई तो उन्होंने निरञ्जन के पास उसकी इच्छा पूछने 'सहज' को भेजा। सहज ने निरञ्जन से कहा, हे भाई! परमपुरुष तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हैं, अब जो माँगना चाहते हो, कहो। निरञ्जन ने 'सहज' से कहा तुम मेरे बड़े भाई हो, तुम परमपुरुष से विनती कर कहो कि मुझे अमरलोक का राज्य ही दे दें या फिर एक न्यारा देश दे दें जिस पर मेरा पूरा अधिकार हो।

चले धरम तब मानसरोवर। बहुत हरषचित करत कलोहर ॥

मानसरोवर आये जहिया। भये आनन्द धरम पुनि तहिया ॥

बहुरि ध्यान पुरुष को कीन्हा। सत्तर युग सेवा चित दीन्हा ॥

यक पग ठाढ़े सेवा लायी। पुरुष दयाल दया उर आयी ॥

विकस्यो पुहुप उठयो जब बानी। बोलत वचन उठयो अधरानी ॥

जाहु सहज तुम धरम के पासा। अब कस ध्यान कीन्ह परगासा ॥

चले सहज तब सीस नवाई। धरमराय पहुँचे जाई ॥

कहे सहज सुन भ्राता मोरा। सेवा पुरुष मान लइ तोरा ॥

अब का माँगहु सो कह मोही। पुरुष आवाज दीन्ह यह तोही ॥

अहो सहज तुम जेठे भाई। करो पुरुष सो विनती जाई ॥

इतना ठाँव न मोहि सुहाई। अब मोहि बकसि देहु ठकुराई ॥

मोरे चित्त अस भौ अनुरागा। देऊ देश मोहि करहु सभागा ॥

कै मोहि देहु लोक अधिकारा। कै मोहि देहु देस यक न्यारा ॥

निरञ्जन की बात सुनकर 'सहज' ने वापस आकर जो कुछ निरञ्जन

ने कहा वो सब परमपुरुष से कह दिया। परमपुरुष ने सहज के वचन प्रसन्नतापूर्वक सुनकर कहा मैं निरञ्जन को शून्य में एक अलग तीन लोक देश बसाने और उस पर 17 चौकड़ी असंख्य युगों का राज्य देता हूँ। हे सहज! तुम जाकर निरञ्जन को यह बता दो। जब सहज ने जाकर परमपुरुष की आज्ञा सुनाई तो निरञ्जन को कुछ प्रसन्नता और कुछ विस्मय हुआ।

निरञ्जन ने सहज से कहा कि परमपुरुष दया करके अलग राज्य तो दे दिया पर उसे कैसे रचूँ और कैसे विस्तार करूँ इसका गम्य-अगम्य मुझे नहीं आता। दया करके मुझे इसकी युक्ति बतायें कि मैं कैसे कार्य करूँ, मैं भेद नहीं जानता। हे बड़े भ्राता! आपकी बलिहारी है, आप ही परमपुरुष से विधि और सामग्री पूछकर मुझे बतायें जिनसे जगत की रचना करूँ। किस प्रकार नौ-खण्ड बनाऊँ वो सामग्री तो दो।

सहज ने परमपुरुष के पास जाकर दण्डवत् प्रणाम किया और निरञ्जन की विनती सुना दी। परमपुरुष ने सहज को आज्ञा दी, कहा कि 'कूर्म' के पेट में रचना का सब सामान है; तुम निरञ्जन से कहो कि कूर्म से विनती करे और सामान माँग ले। तब 'सहज' ने निरञ्जन के पास जाकर परमपुरुष की आज्ञा सुनाई कि कूर्म से विनती कर माथा झुकाकर सामग्री माँग लेना वह कृपा कर तुम्हें दे देंगे।

चले सहज सुनि धर्म के बाता। जाय पुरुष सो कहे विख्याता ॥
जो कछु धर्मराय अभिलाषी। तैसे सहज सुनाये भाषी ॥
सुन्यो सहज के वचन जबहीं, पुरुष बैन उच्चारैऊ।
धरम से संतुष्ट हम, बचन मम हिय धारैऊ ॥
लोक तीनों ताहि दीन्हो, शून्य देश बसावहू।
करहू रचना जा तहवाँ, सहज वचन सुनाबहू ॥
आय सहज तब वचन सुनावा। सत्यपुरुष जस कहि समुझावा ॥
सुनतहिं बचन धर्म हरषाना। कछुक हरष कछु विस्मय आना ॥
कहे धर्म सुनु सहज पियारा। कैसे रचौं करौं विस्तारा ॥

पुरुष दयाल दीन्ह मोहि राजू । जानू न भेद करों किम काजू ॥
 गम्य अगम्य मोहि नाहिं आयी । करो दया सो युक्ति बतायी ॥
 विनती करौ पुरुष सों मोरी । अहो भ्रात बलिहारी तोरी ॥
 किहि विधि रचूँ नौ खंड बनाई । हे भ्राता सो आज्ञा पाई ॥
 मो कहँ देहु साज प्रभु सोई । जाते रचना जगत की होई ॥
 तबही सहज लोक पगु धारा । कीन्ह दण्डवत् बारंबारा ॥
 कह्यो सहज तब धर्म की बाता । जो कछु धर्म कही विख्याता ॥
 आज्ञा पुरुष दीन्ह तेहि बारा । सुनो सहज तुम बचन हमारा ॥
 कूर्म उदर अहि सब साजा । सो ले धरम करे निज काजा ॥
 विनती करे कूर्म से जाई । माँगि लेई तेहि माथ नवायी ॥
 गये सहज पुनि धर्म के पासा । आज्ञा पुरुष कीन्ह परगासा ॥
 विनती करो कूर्म सो जाई । माँगि लेहु तेहि सीस नवाई ॥
 जाय कूर्म ढिंग सीस नवावहु । करिहैं कृपा बहुत तब पावहु ॥

निरञ्जन अति उत्साह से मन में गहन घमण्ड के साथ कूर्म जी के पास पहुँचा और उनके सामने जाकर किसी प्रकार की विनती प्रणाम नहीं किया । कोई प्रार्थना नहीं की । कूर्म जी अमृत समान सुखदाई, शाँत और तन को ताप से मुक्त कर शीतलता देने वाले थे । दम्भ से भरे निरञ्जन ने देखा कि कूर्म जी अत्यन्त बलशाली हैं उनका शरीर निरञ्जन से दो गुना था । निरञ्जन क्रोधित होकर कूर्मजी के चारों ओर दौड़ने लगा, सोचने लगा कि कैसे उत्पत्ति की सामग्री ले लूँ । कूर्म जी के सम्मुख जाकर उस ने नखों से सिर पर प्रहार किया और पेट पर आघात किया । कूर्म जी के तीन शीश काट कर खा लिये और पेट से पवन निकलने लगी । कूर्म जी के तीन शीश के अंश रूप ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश की उत्पत्ति के स्रोत हुए और त्रिदेवों का वंश बना । पेट से पाँच तत्वों आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सहित सूर्य, चन्द्र, तारे आदि सब सूक्ष्म रूप से निकले । इन सबको ढकने वाला नभ भी निःसृत हुआ । समस्त तत्व लेकर निरञ्जन शून्य में

आया जल बूँद से उनचास कोटि आकार की पृथ्वी बनाई। यह पूरी सृष्टि फिर भी निर्जीव थी। निरञ्जन का निवास अब भी अमरलोक का मानसरोवर द्वीप ही था।

काल का कष्ट सहकर अमरलोक में रह रहे कूर्म ने परमपुरुष से ध्यान में कहा कि निरञ्जन ने बल प्रयोग करके मेरा पेट फाड़ा है, पर आपकी आज्ञा जानकर मैंने उसे कुछ नहीं कहा। परमपुरुष ने कूर्म से कहा वो तुम से छोटा है और बड़ों की रीत यही होना चाहिए कि छोटों को प्रेम कर क्षमा कर उनके अवगुण भुला दें।

चलि भौ धरम हरष तब बाढ़ो। मनहिं कीन गुमान अति गाढ़ो।
जाय कूर्म के सम्मुख भयऊ। दण्ड परनाम एक नहिं कियऊ ॥
अमी स्वरूप कूर्म सुखदाई। तपत न तनि को अति शितलाई ॥
करि गुमान देख्यो जब काला। कूर्म धीर अति है बलवाला ॥
बारह पालँग कूर्म शरीरा। छैः पालँग धरम बलवीरा ॥
धावै चहुँ दिश रहै रिसाई। किहि विधि लीजे उत्पत्ति भाई ॥
कीन्हो रोष कोपि धर्म धीरा। जाय कूर्म के सन्मुख भीरा ॥
कीन्हो काल सीस नख घाता। उदरते निकसे पवन अघाता ॥
तीन सीस कै तीनहु अंशा। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर वंशा ॥
पाँच तत्व धरती आकाशा। चन्द्र सूर्य उडगन रहिवासा ॥
निसर्यो नीर अग्नि शशि सूर। निसर्यो नभ द्वाकन महि अस्थूला ॥
छीना सीस कूर्म को जबही। चले परसेव ठाँव पुनि तबही ॥
जबही परसेव बूँद जल दीन्हा। उंचास कोट पृथ्वी को चीन्हा ॥
आदि कूर्म रह लोक मँझारा। तिन पुनि ध्यान पुरुष अनुसारा ॥
निरंकार कीन्हो बरियाया। काल कला धरि मोपहँ आया ॥
उदर बिदार कीन्ह उन मोरा। आज्ञा जानि कीन्ह नहिं थोरा ॥
पुरुष अवाज कीन्ह तेहि बारा। छोट वह आहि तुम्हारा ॥
आही यही बड़न की रीति। औगुन ठाँव करहिं वह प्रीती ॥

कबीर साहिब ने चेताया कि —

शिव विरंचि नारद मुनि ज्ञानी । मन की गति उनहूँ नहीं जानी ॥

ध्रुव प्रहलाद विभीषण शेषा । तन भीतरी मन उनहूँ नहीं देखा ॥

तन के छूटने पर भी मन ही जीव के साथ जाता है। मन ही जीव का प्रारब्ध, संस्कार बनकर कर्म संचय और कर्मफल दाता बनता है। वही चित्रगुप्त और वही न्यायकर्ता विधाता है। मन की इस गति को ब्रह्मा, शिव और ब्रह्मज्ञानी, नारद मुनि भी नहीं जान सके। शेष-रूप विष्णु, ध्रुव, प्रहलाद और विभीषण जैसे भक्तगण भी मन के रहस्य को नहीं जान सके। वे भी देह के भीतर स्थित मन को नहीं देख सके। **‘मन की गति उनहूँ नहीं जानी।’** मन के रहस्य को तो कोई संत सद्गुरु ही बताने में समर्थ है जो **‘मन’** के इस अनित्य-असार संसार अर्थात् नश्वर सृष्टि से ऊपर सत्यपुरुष लोक का वासी और अनुभवी हो। कोई भी यह नहीं विचार करता कि शरीर छूटने पर **‘मन’** कहाँ चला जाता है? सभी केवल यही ज्ञान-विचार करते हैं कि देह छूटने पर **‘आत्मा’** जाकर पुनः कर्मानुसार अन्य शरीर में आती है। कोई भी कभी चिंतन नहीं करता कि तन छूटने के बाद यह **‘मन’** कहाँ चला जाता है? इस विषय में सनक-सनन्दन और गौरी-गणेश भी नहीं जान सके।

योगेश्वरों और योगियों ने अनेक प्रकार से ध्यान किया, अनेक प्रकार के जप-तप किये, शरीर को कष्ट दिया – सुखा डाला परन्तु फिर भी यह मन वश में नहीं हुआ, पकड़ में नहीं आया। कबीर साहिब ने कहा —

मन ही सरूपी देव निरञ्जन, तोहिं रहा भरमाई ।

हे हँसा तू अमरलोक का, पड़ा काल बस आई ॥

पाँच-पच्चीस तीन का पिंजड़ा । जामे तोहिं राखा भरमाई ॥

अलख-निरञ्जन (ज्योति-निरञ्जन) जिसे कोई देख नहीं पाता, संसार के समस्त प्राणियों को बाँधे हुए है। मन से ही अज्ञान में फँसे लोग उसकी झूठी माया को सच मानकर उसके बँधन में स्वयं ही बँधे हैं। इस प्रकार

सारी सृष्टि भ्रम में है। लोग दही के स्थान पर पानी का मंथन किये जा रहे हैं। जिस तरह चकोर अंगार को ही चन्द्रमा मानकर उसे मुँह में डालता है। चकोर की जीभ और चोंच जलती है तो वह उसे उगल देता है। दूसरे ही क्षण फिर-फिर उसे चन्द्रमा के भ्रम में मुँह में लेता है और अंत में असीम दुःख को प्राप्त होता है। इसी प्रकार संसारी मनुष्य निरञ्जन को ही अन्तिम सत्य मानकर बैठे हैं। सब निरञ्जन की तरफ ही जा रहे हैं, उसी की भक्ति कर रहे हैं। अन्त में परमदुःख को प्राप्त हो रहे हैं। कोई भी आवागमन से छूट नहीं पा रहा है और निरन्तर निरञ्जन की चौरासी की चक्की में पिस रहे हैं। उदाहरण के तौर पर — ‘एक उपग्रह और मिसाइल (प्रक्षेपास्त्र) पर आकाश में नियंत्रण एक छोटे से रिमोट कण्ट्रोल द्वारा पृथ्वी के वैज्ञानिक कक्ष से हो रहा है। उपग्रह और मिसाइल को रिमोट कण्ट्रोल से घुमाया जा सकता है।’

मन के रूप

इस शरीर और जीवात्मा पर भी रिमोट कण्ट्रोल वाला कार्य हो रहा है। मन जो चाहता है इससे करवाकर छोड़ता है। मन शरीर के भीतर इससे करवाकर छोड़ता है। मन शरीर के भीतर चार रूपों में क्रियाशील है — **मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार**। ये चारों रूप आत्मा को भ्रमित कर रहे हैं। जैसे पानी के तीन रूप हैं — तरल, ठोस तथा वाष्प किन्तु तत्व रूप से तीनों एक ही हैं। ठोस रूप बर्फ भी पानी ही है और वाष्प भी। इसी तरह मन के चार रूप भी मूल रूप से एक ही ‘मन’ है। समस्त इच्छायें मन से हैं। आत्मा कोई इच्छा नहीं करती है। आत्मा को किसी भी पदार्थ-तत्व की जरूरत नहीं है। आत्मा किसी पर आश्रित नहीं है, वह स्वयं ही परिपूर्ण है, आनन्दमयी है फिर इच्छा क्यों करेगी। आत्मा को किसी घर की किसी खाने की इच्छा नहीं होती, सर्दी-गर्मी-भूख नहीं लगती। हमारा मन ही सदा कुछ अच्छा-अच्छा खाने की इच्छा करता है।

हम अज्ञानतावश कहते हैं; हमारी आत्मा खाने को कह रही है। आत्मा का मुँह ही नहीं है, खाएगी क्या। यह तो मन और इन्द्रियों का समझौता है, मन ही हर इन्द्री को उत्तेजित करता है। मन ने इच्छा की और इन्द्री मन की आज्ञा के पालन में जुट गई। आत्मा को शरीर में रखकर जीव बनाकर ही निरञ्जन ने धोखा दिया है। आत्मा ने अपनी शक्ति-उर्जा मन को सौंप दी है। बारम्बार शरीरों के जन्म-मरण में साथ रहकर आत्मा स्वयं को भूल गई है। मन के स्वार्थ की पूर्ति में अपनी ताकत (उर्जा) इन्द्रियों को दे रही है।

हम सभी सैद्धान्तिक रूप से तो मानते हैं कि शरीर नाशवान है। बड़े-बड़े महापुरुषों को एक बिन्दु पर पहुँचकर शरीर को छोड़ना पड़ा। लेकिन विडम्बना यह है कि हम व्यवहार में शरीर से बहुत प्यार कर रहे हैं। सब कुछ शरीर की सुख-सुविधा के लिए ही करते हैं। आत्मा के कल्याण के लिए, आत्मा को शरीर-मन के बँधन से छुड़ाने के लिए हम कोई कार्य नहीं करते। सन्त कहा करते हैं कि वेद-शास्त्रों या अन्य धार्मिक ज्ञान का कितना भी अध्ययन कोई कर ले; लेकिन जब तक हम यथार्थ में अपनी आत्मा से परिचित न हो जायें; मन को देख न लें तब तक हम अपने को शरीर से परे एक आत्मा मानकर व्यवहार नहीं कर सकते। हम अपने को आत्मा न समझकर एक शरीर ही मान रहे हैं। इसलिए आत्मा भी अपनी अमरता की प्रकृति के कारण शरीर में रहकर उसे भी अमर मान रही है, सत्य मान रही है, नित्य मान रही है। वास्तव में शरीर नाशवान है, अनित्य है, झूठ है किन्तु मन रूपी निरञ्जन के वशीभूत आत्मा सदा नया शरीर धारण करने के कारण स्वयं को शरीर में ही अमर मान बैठी है।

सुर नर मुनि सबको ठगे, मनहिं लिया औतार।

जो कोई याते बचै, तीन लोक से न्यार॥

इस मन ने मनुष्य, मुनिजन, देवता सबको धोखे में डाला है। मन ने

ही अवतार धारण किये हैं और रक्षकर बनकर सामने आया है। जो कोई इस मन के **धोखे-छल-झूठ** को समझकर सद्गुरु की शरण में आ जाता है, वो तीन लोकों से पार होकर चौथे लोक (अमरलोक) चला जाता है।

मन का दूसरा रूप है 'बुद्धि' — अपनी इच्छा आकाँक्षाओं, संकल्पों को पूरा करने के लिए मन का दूसरा रूप बुद्धि निर्णय लेती है। अमुक कार्य करना है या नहीं करना है, कौन मित्र है या शत्रु है। किसी कार्य से लाभ होगा या हानि। कहीं जाना ठीक है या नहीं। क्या खाया जाये क्या नहीं। कौन सा व्यवसाय अच्छा या बुरा है। किसकी सहायता की जावे या किससे बदला लिया जावे आदि फैसले बुद्धि करती है। बुद्धि के ऐसे सभी निर्णय शरीर व जीवन के हित के लिए ही होते हैं। आत्मा के विषय में सोचने का तो बुद्धि को समय ही नहीं मिलता क्योंकि बुद्धि मन का रूप है, आत्मा से उसका कोई लेना-देना नहीं है। मन का निर्णय बिन्दु है बुद्धि जिससे वह इच्छा-आकाँक्षा-संकल्प की पूर्ति हेतु आगे बढ़ता है। आत्म ज्ञानियों के सत्संग से प्रभावित होकर ही थोड़ी देर आत्मा के विषय में सोच पाते हैं। ऐसा तभी सम्भव हो पाता है, जब संत पुरुषों की अलौकिक वाणी हमारी आत्मा को छू जाती है और हम विचार में खो जाते हैं। विचार आत्मा का गुण है; पर थोड़ी ही देर में मन-बुद्धि हमें '**विचार**' से बाहर लाकर अपने प्रभाव में ले लेते हैं। हम आत्मा के विचारों को छोड़कर मन की दुनिया में रम जाते हैं।

जीव सतावे काल, नाना कर्म लगाय के।

आप चलावे चाल, कष्ट देय पुनि जीव के ॥

काल मन स्वयं ही चाल चलकर जीवों से कर्म करवाता है, और फिर स्वयं ही उन्हें कष्ट देता है।

मन का तीसरा रूप है 'चित्त' — चित्त का काम है, याद करना, स्मृति दिलाना अर्थात् यह मन का संग्रह-स्थल है। मन की इच्छा-आकाँक्षा की पूर्ति का फैसला होने पर '**चित्त**' बतायेगा कि यह इच्छा-

पूर्ति कहाँ से और कैसे होगी। कौन सी खाने की वस्तु कहाँ-कैसे मिलेगी, किसी स्थान यात्रा को जाने साधन कहाँ-कैसे मिलेगा, मकान बनाने की सामग्री कहाँ-कैसे मिलेगी आदि की स्मृति याद चित्त ही करायेगा। चित्त भी केवल मन की इच्छापूर्ति के लिए ही अग्रसर करेगा। यह भी आत्मा के लिए कभी आगे आने वाला नहीं है, प्रभु को याद नहीं करने देगा। हम किन्हीं स्थानों को घटनाओं को, पुरानी बातों को याद करते हैं चित्त हमें तुरन्त उन स्थानों उन घटनाओं, उन पुरानी बातों तक सामने लाकर ले जाता है। पचास साल-सौ साल की बातें भी याद आ जाती हैं, पर कभी भी यह 'चित्त' आत्मा-परमात्मा का चित्त नहीं उभरने देगा। चित्त मन के अनुरूप ही स्मृति को लावेगा आत्मा से उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। हम सब जीव कहीं उलझे हुए हैं, यह गम्भीर विषय है, गहराई से विचार करना होगा।

देहधरि नर परगट होवे, फिरिताहि आशा कीन्हेऊ।

भरमत इत उत काल बस, बहुत पुण्य में चित्त दीन्हेऊ॥

मनुष्य तन पाकर भी जीव काल की ही आशा में उधर-उधर चित्त के पुण्य कर्मों में भटकते हुए काल निरञ्जन के वश में है।

मन का चौथा रूप है 'अहंकार!' — इसका काम है, क्रियान्वयन, कार्य को अन्जाम देना। चित्त के यह बताने पर कि कार्य किस स्थान या किसी साधन से सम्पन्न होगा या किस सहारे से पूर्ण होगा; अहंकार उस कार्य को सम्पन्न करता है। उदाहरण के लिए मन ने इच्छा की कि आम खाना है। इस पर बुद्धि पहले देखती है कि आम खरीदने के लिए पैसे भी है या नहीं इस पर बुद्धि फैसला करती है - यदि पैसे नहीं हैं तो बुद्धि मन से कह देती है, पैसे नहीं हैं, आम नहीं खा सकते। यदि आम खरीदने के लिए पैसे हैं - बुद्धि फौरन फैसला करती है, हाँ आम खायेंगे। अब आम कहाँ मिले यह बताता है 'चित्त'। हमने चलते-फिरते जहाँ कहीं आम की दुकान देखी थीं, चित्त में यह बात यह दृश्य बैठ गया था वह

याद आ गया। अब हम चलकर आम खरीदने के लिए जाते हैं और आम खरीदते हैं, यही मन का अहंकार कहलाता है।

जब सारी इच्छायें समाप्त हो जायें तो समझो मन सो गया। जब कोई निर्णय न हो और कोई तर्क-वितर्क मन में न उठे तो समझो बुद्धि की सत्ता समाप्त हो गई, बुद्धि भी सो गई। जब कुछ याद न आए, तो समझो चित्त भी सो गया। जब कोई क्रिया करने के लिए हाथ-पाँव न चलें, तो समझो अहंकार भी सो गया। जब ये चारों सो गए, बस उस समय आत्मा का अनुभव हो गया। **मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार** को छोड़कर पीछे जो बचा वो ही आत्मा है। आत्मा अपने को स्वयं अनुभव करती है, उसका कोई साक्षी नहीं है। मन से मुक्त होने पर आत्मा अपनी दृष्टा स्वयं है। मन से अलग होने पर ही स्वयं आत्मा कर्ता है। साहिब ने कहा —

मन गोरख मन गोविंदा, मन ही औघड़ होय।
जो मन राखै जतनकरि, तो आपै करता होय॥



मैं 'मन' ही सृष्टि से परे ररंकार हूँ॥
मैं ही साकार-निराकार में विद्यमान हूँ।
मैं ही आलोकित ज्योतिस्वरूप सौर्य मण्डलों में व्याप्त हूँ।
मैं ही सप्त आकाश और सप्तसागर पाताल हूँ।
मैं ही सृष्टि रचना लघु-प्रलय महाप्रलय का आधार हूँ॥

मन की शक्तियाँ

मन चारों रूपों में जीव पर शासन करने के लिए पाँच अमोघ-अस्त्रों से सदैव सुसज्जित रहकर 'आत्मा' को अपने फँदे में जकड़े हुए है। काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद ये पाँच मन का शरीर हैं या अस्त्र हैं। मन के अस्त्र रूपी इन अवयवों का अपना-अपना बड़ा परिवार जो मन को कभी शिथिल नहीं होने देता, सोने नहीं देता। इन सबने 'आत्मा' से चेतन शक्ति प्राप्त करने के लिए अर्थात् उसे अपनी सहयोगी बनाने कसकर पकड़ा हुआ है। जीवात्मा अनेक प्रकार से मन के बँधनों में बँधी है। साहिब की वाणी है —

बहु बन्धन से बाँधिया एक विचारा जीव।

जीव विचारा क्या करे जो न छुड़ावे पीव॥

स्वयं मन भी काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार के वश में है। 'काम' मन पर सवार हो जाता है, 'क्रोध' भी मन को ही आता है, 'लोभ' भी मन ही करता है। 'मोह' भी मन ही करता है और 'अहंकार' (मद) भी मन पर छाया रहता है। कबीर साहिब ने मन की इन शक्तियों के बारे में कहा —

मन पाँचों के वश पड़ा, मन के वश नहिं पाँच।

जित देखूँ तित दौं लगी, जित भागूँ तित आँच॥

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलया कोय॥

जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय॥

मन के इसी अन्तःशरीर के कारण मन की इच्छायें कभी पूरी नहीं होतीं। प्रत्येक मनुष्य का मन, इसी कारण बुराइयों के वश में है। इन बुराइयों को कोई देख ही नहीं पाता है। यदि मन की सारी इच्छायें पूर्ण

(पीव = सद्गुरु, परमात्मा)

की जा सकतीं तो संसार में कोई दुःखी नहीं होता। मन रूप निरञ्जन संसार बना कर स्वयं दुःखी है।

‘काम’ मन का मस्तिष्क है — कामुकता-वासना-विषय-भोग की पूर्ति के लिए मारण, मरण, मोहन, वशीकरण तथा उच्चाटन ‘काम’ की शक्तियाँ हैं। साहिब ने कहा—

यह काम अति प्रचण्ड है, होय उत्पन्न तिय अंग।

सैन-चैन अतिहि बड़े, चढ़े काम रति रंग॥

तन मन अस्थिर न रहे, काम बान उर साल।

एक बाण से सब किये, सुर नर मुनि बेहाल॥

‘मन’ जब काम प्रकट करता है तो ज्ञान-विचार सब विस्मृत हो जाता है। काम की सेना बहुत बड़ी है। ‘काम’ के वशीकरण से शिवजी ने भी ध्यान छोड़कर मोहिनी रूप विष्णु से ही रतिभोग कर डाला। ‘काम’ के वश हो इन्द्र ने गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या के साथ छल से रति की। निरञ्जन (मन) की शक्ति ‘काम’ ने श्रृंगी ऋषि, नारद मुनि और रावण जैसे बलशाली को भी नहीं छोड़ा। ‘काम’ ने बड़े-बड़े ज्ञानी-ध्यानियों को भी दल कर खा लिया। ‘काम’ का परिवार है — पत्नी है ‘रति’, पुत्र है ‘लालच’ और बँधु है ‘लोलपुता’। काम का यह परिवार बहुत बुरा है, बुरा ही कर्म करने वाले हैं ये सब। जब मन का यह ‘काम’ मनुष्य पर सवार होता है तो उसे कुछ भी होश बाकी नहीं रहने देता। कामातुर मनुष्य बड़े ही चरित्रहीन कार्य कर डालता है। काम ने सभी को अपने अधीन कर ‘आत्मा’ से बहुत दूर कर दिया है। यही ‘काम’, बार-बार नश्वर पापी शरीर धारण करवाने में मन का सहायक है। इसीलिए साहिब ने कहा —

कामी कबहुँ न गुरु भजै, मिटे न संसय सूल।

और गुनन सब बक्सिहौं, कामी डार न मूल॥

वासना और कामुकता में लिप्त मनुष्य कभी गुरु को नहीं भज

सकता, न ही उसके संशय मिटते हैं। 'कामी' की न तो जड़ है न कोई शाखा, वह अमरबेल की तरह है, इसलिए सद्गुरु भी उसे मुक्ति नहीं दिलायेंगे।

यह 'काम' मन की वो शक्ति है जिसने मनुष्य तो क्या ऋषि, मुनि, देवता और ब्रह्मा, विष्णु व महेश को भी परास्त कर भवसागर में रहने के लिए विवश कर दिया। यही कारण है कि तीन लोकों के कर्ता-धर्ता ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी निरञ्जन के बन्धन से मुक्त होकर अमर लोक पाने में समर्थ नहीं हैं।

भक्ति बिगारी कामियाँ, इन्द्री के रे स्वाद।

हीरा खोया हाथ से, जन्म गँवाया बाद॥

सद्गुरु का शब्द विवेक 'नाम' जिसे मिल जाएगा वही 'काम' के वाण से बच सकता है। साखी है —

प्रेम प्रीति सो बाँधिया, कहे कबीर समझाय।

ता प्रेम महँ विवेक बिनु, रहे जीव मुरझाय॥

सुर नर मुनि सब जीतिया, कोई न उबरे धाम।

महा मोह शिर नायके, कियो उपायन काम॥

'क्रोध' मन की ताकत रूपी भुजा है। काम से भी अधिक प्रचण्ड है। कुबुद्धि, क्रोध की बुद्धि है जो कई भेष धरकर आती है। इसी कारण हिंसा बलवती होकर प्रहार करती है। इससे समस्त नौ-खण्ड भी काँपते हैं। शिव क्रोधमय रूप में ही संहार करते हैं— प्रलय लाते हैं। क्रोध में मनुष्य भूल जाता है कि परिणाम क्या होगा। यदि क्रोध में किसी दूसरे को क्षति नहीं पहुँचती तो स्वयं की क्षति अवश्य होती है। क्रोध में बुद्धि और चेतना का कोई सहारा मन नहीं लेता है। केवल शरीर की शक्ति से हाथ और जुबान क्रियाशील होकर अनिष्ट कार्य होता है। क्रोध आते ही देह थर-थर काँपती है। भौंहें टेढ़ी होकर नेत्रों में समाती हैं और मुँह से अशुभ वाणी निकलती है। रोम-रोम अग्नि के समान जलने लगता है। मारने

और अपघात करने को ही मन प्रेरित करता है जो माता, पिता, भाई, बहन किसी को नहीं छोड़ता।

ब्रह्मा जी ने क्रोध में अपने ही छः पुत्रों को श्राप दे दिया। बैकुण्ठ में सनकादिक को द्वार पर रोकने से जय और विजय क्रोध का शिकार होकर श्राप से असुर बने। तीन जन्मों तक बेहाल होकर हिरण्यकुश, रावण और शिशुपाल जन्म हुआ। क्रोध से ही राम जी ने ताड़का को मारा। दुर्वासा ऋषि के तप की हानि क्रोध के कारण हुई। छप्पन करोड़ यादवों और कौरव-पाण्डवों का विनाश क्रोध के कारण ही हुआ। मन रूपी भगवान का बड़ा विनाशकारी ब्रह्मास्त्र क्रोध ही है।

क्रोध के परिवार में - पत्नि है 'हिंसा', पुत्र है 'अविचार' और बँधु है 'भूल'। मन की यह ताकत 'आत्मा' को विचार रहित बनाये रखती है। जब भी मनुष्य को क्रोध आता है तो उसके मस्तिष्क पर एक पर्दा सा छा जाता है। फिर उसे अपना-पराया कुछ भी नहीं सूझता और बड़े मूर्खों वाले काम हो जाते हैं। मनुष्य गाली बकता है, मारपीट करता है, आपे से बाहर हो जाता है पर बाद में पछताना पड़ता है। क्रोध ने समय-समय पर संसार का बहुत विनाश किया है। साहिब ने कहा —

दसों दिसा से क्रोध की, उठी अपरबल आग।

सीतल संगत साध की, तहाँ उबरिये भाग॥

कहे कबीर विचारिके, क्रोध अग्नि बहु जाग।

संगति साधु सत्यनाम की, शरन उबरिय भाग॥

दसों दिशाओं में क्रोध की अपार शक्ति प्रज्ज्वलित हो रही है। इसे केवल साधु की संगति और सत्संग में जाकर ही शान्त किया जा सकता है। मनुष्य, आत्म-परमात्म के ज्ञान तथा आध्यात्म से ही क्रोध रूपी अग्नि से बच सकता है। सबका कल्याण और परमार्थ की भावना से हिंसा और अविचार पर अँकुश लगता है। मन की इसी शक्ति के कारण भी आत्मा बँधनमुक्त होने में असहाय है। आत्मा अपनी सहजता और

अमलता के लिए व्याकुल है। मन अपनी क्रोध की शक्ति से पाप पूर्ण कार्य करवा कर जीव को बार-बार शरीर के बँधनों में रखता है।

‘लोभ’ — मन का हृदय है ‘लोभ’ जो काम व क्रोध से भी बढ़कर है। जैसे हृदय गति रुकने से मनुष्य शरीर की मृत्यु हो जाती है, उसी प्रकार ‘लोभ’ को वश में करके मन को मारना आत्मा की जीत है। मन कभी भी जीव को लोभ से मुक्त नहीं होने देता है। आत्मा को संसार में बाँधे रखने के लिए ‘लोभ’ मन का अजय अस्त्र है।

बुरा लोभ ते ओर न कोई, सकल अधर्म लोभ ते होई ॥

साहिब ने कहा लोभ से बुरा ओर कोई नहीं है। समस्त अधर्म लोभ से होते हैं। लोभवश माया को ही मन में लाता है और अगम-निगम दसों दिशाओं में दौड़ाता है। यह बुद्धि को भी नष्ट करके उलझाता है, मृत्यु और काल से भी नहीं डरता। यह मन, मनुष्य को लोभ में लगाकर जागने और सोने भी नहीं देता। दस से बीस, बीस से पचास, पचास से सौ, सौ से हजार, हजार से लाख और करोड़ों तक जाते-जाते संसार तथा नौ खण्डों तक लोभ ले जाता है। चार-वेद, यंत्र-मंत्र, उलटा लटक कर तपस्या और 18 पुराण की पढ़ाई भी लोभ करवा देता है। कबीर साहिब ने शिष्य धर्मदास को बताया कि कलियुग में पाप कर्म ही बढ़ेंगे और पाप कर-करके ही लोग दुःख में पड़ेंगे। विषय-भोग के लोभ के कारण धन की इच्छायें बढ़ेंगी। तृष्णा लोभ की ही संगिनी है बल्कि लोभ की अर्धांगिनी है। वाणी है —

भेष भक्त मुदित सबै, ज्ञानी गुनी अपार।
 षट दर्शन फीके परे, एक लोभ के लार॥
 भगत मुड़िया जटाधारी, ज्ञानी गुनी अपार।
 षट दर्शन भटकत फिरे, एक लोभ की लार॥
 धावै औगुन धनहि को, लालच बान चढ़ाई।
 कहै कबीर विचारिके, गुण शील सब जाई॥

जहाँ लोभ गुण औगुन है, तहाँ नहिं शील स्वभाव।

लोभ औगुन ते वाचनो, गुरु बिन कहै को दाव॥

लोभ के परिवार में — पत्नी 'तृष्णा' है, बेटा 'पाप' और बहु है झूठ।
लोभ पाप का बाप है, क्योंकि सारे पाप मनुष्य लोभ में फँसकर ही करता है।

कामी मनुष्य भी तर गए, क्रोधी भी सुधर कर तर गए पर लोभी मनुष्य के लिए कबीर का सिद्धान्त भी रूक गया।

कामी नर बहुते तरे, क्रोधी तरे अनन्त।

लोभी बन्दा न तरे, कहे कबीर सिद्धन्त॥

कह रहे हैं — यह उल्टे ज्ञान का अन्ध कूप है (औंधी खोपड़ी) जो कभी भरता ही नहीं है। अर्थात् लोभ कभी थकता नहीं, उसका कोई अन्त नहीं है।

कबीर औंधी खोपरी, कबहुँ धापे नाहिं।

तीन लोक की सम्पदा, कब आवै घर माहिं॥

जिस प्रकार निरञ्जन के सातों पाताल में भी पैरों का अन्त नहीं है और सातों आकाशों में शीश का अन्त नहीं है, मन बनकर सब में समा गया है। उसी प्रकार 'लोभ' मन के साथ प्रत्येक जीव में समाया हुआ है। तीनों लोकों की सम्पदा भी मनुष्य को मिल जाय तो उसका लोभ खत्म नहीं होगा। सदा पाने की लालसा बनी रहेगी। इस पाप से मनुष्य आत्मा को तभी मुक्त देख सकता है जब वह जान ले कि लेने से सुख नहीं मिलेगा। देने से और त्याग से ही सुख सम्भव है। वाणी है —

जो धन प्रभु के हेत नाहिं, परमारथ नहीं जाय।

चोर लबार लेत हैं, धर सीने पर पाँय॥

संचय करने, और पाने की, हवस ही लोभ है, मन इससे कभी नहीं भरता। मेहनत से, सही साधन से आवश्यकता भर आए जिससे मनुष्य स्वयं भूखा न रहे और घर आया साधु या अतिथि भी भूखा न जाये। पैसा सम्भालना और सुकमाई के धन की सुरक्षा करना लोभ नहीं है।

साँई इतना दीजिए, जामे कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

‘मोह’ — मन रूपी देश की राजधानी है मोह। मोह का महल है आलस्य। मन का चौथा अमोघ-अस्त्र है ‘मोह’ जो मनुष्य को संसार में बाँधे रखने के लिए माता-पिता, पत्नि-बच्चे, भाई-बहन और मित्र-बन्धुओं के रिश्तों से बाँधे रखता है। जीव-परमात्मा को भूल सकता है किन्तु इन रिश्तों में से जिसके प्रति भी उसकी प्रेमासक्ति है उसके मोह में अपना जीवन न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहता है।

मोह के परिवार में - पत्नि है ‘आशा-तृष्णा’, बेटी है ‘इच्छा’, बेटा है ‘लालच’, मंत्री है ‘पाखण्ड’, वजीर है ‘कपट’, मित्र है ‘रोग’ और ‘शोक’। इसप्रकार मन का परिवार बहुत बड़ा है। मन ने जीवों को मोह-जाल में जकड़ कर ‘आत्मा’ की सुधि आत्म-विचार से बहुत दूर कर दिया है। मनुष्य की केवल यही तृष्णा यही लालसा रहती है कि वह अपने पुत्र-पुत्री, पत्नि, भाई, माता-पिता से दूर न हो। जिस प्रकार पत्नि अपने पति से अलग होने का कभी नहीं सोच सकती, उसी प्रकार मोह की पत्नि भी तृष्णा है। हर मनुष्य की यही इच्छा रहती है कि वह हर प्रकार से अपने परिवार को सुखी रख सके। जिस प्रकार बेटी अपने माता-पिता-भाई के सुखी रहने की ही कामना करती है; परिवार के सुख के लिए मनुष्य लालचवश प्रत्येक कार्य करने को तत्पर हो जाता है। लोभ का वरण करता है। इसलिए, मोह का बेटा है, ‘लालच’। जिसके प्रति अधिक मोह है, उसके हित के लिए किसी की भी सलाह, तंत्र-मंत्र, ओझा-जानियां के पाखण्ड में पड़ने से मनुष्य पीछे नहीं हटता। इस मोह की पूर्ति के लिए मन का सबसे बड़ा वजीर (सलाहकार) ‘कपट’ किसी के साथ भी धोखा-छल करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसीलिए मोह के मित्र हैं ‘रोग’ और ‘शोक’ क्योंकि मोहवश हर प्रकार के न करने योग्य कर्म करने से मनुष्य को दुःख, पछतावा, रोगों, दण्ड

और पाप का भी भागी बनना होगा। मोह दूसरों का निंदक तथा द्रोही है। दुःख-दरिद्र इसके अभिमान हैं। अधर्म की ध्वजा इसके आगे चलती है, जिसके बाजे और साज 'कलह' के रूप में प्रकट होते हैं। मोह की यह सेना नौ-खण्डों में व्याप्त है।

मन के इस खेल का 'आत्मा' से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि आत्मा का कोई सगा-सम्बन्धी साथी नहीं है। आत्मा तो परमात्मा का अंश होने से सदा एक रस है। केवल मोह के कारण किये गए पाप कर्मों से जन्म-मरण के आवागमन का दण्ड शरीर रूप में आत्मा को भोगना पड़ रहा है। जीव को सत्य पथ से हटाने के लिए मोह ही परिपूर्ण है। इसी के कारण पक्षपात होता है। कबीर साहिब ने कहा —

जब घट मोह समाइया, सबै भया अँधियार।

निर्मोह ज्ञान विचारिकै, कोई साधु उतरे पार॥

जब मनुष्य के हृदय में मोह समाता है तो उसे शेष समस्त संसार अप्रिय और अँधकार मय लगता है। इससे कोई निर्मोही साधु ही बच सकता है। कोई सद्गुरु ज्ञान से युक्त मनुष्य ही पार पा सकता है।

मोह-क्रोध के कारण पति शिव के अपमान का बदला लेने के लिए पार्वती जी अपने पिता प्रजापति के हवनकुण्ड में कूद कर जल गई और यज्ञ नष्ट कर दिया था। प्रजापति ने यज्ञ में शिव को आमंत्रित नहीं किया था। पार्वती जी के आग्रह पर ससुराल के मान हेतु शिव जी यज्ञ में चले गए थे। प्रजापति द्वारा आमंत्रण के बिना आए शिव को त्रिस्कृत कर अपमानित किया गया था। फिर शिवजी भी मोह और क्रोध के वशीभूत जली हुई पार्वती जी का शव उठाकर संसार को भस्म करने निकल पड़े। 52-स्थानों पर पार्वती जी के अंग गिरे जो शक्तिपीठ कहलाते हैं। इस प्रकार मोह और क्रोध दोनों मन की विकराल शक्तियाँ हैं जो 'आत्मा' की मुक्ति में बाधक हैं। यह मोह अज्ञान के देश में रहता है। जैसे मछली पानी में रहती है, इसीतरह मन के रचे 'अज्ञान' में मोह रहता है। संसार में सभी इस मोह-अज्ञान में फँसकर स्वरूप को भुला बैठे हैं।

यह सेना सब मोह की, कहे कबीर समझाय।

इनते जो कोई बाचई, भवसागर तरि जाय॥

काम, क्रोध, लोभ और अहंकार भी मोह को अपने साथ बाँधकर शोभायमान होते हैं।

‘अहंकार’ — अहंकार मन का ब्रह्मास्त्र है। मनुष्य की आत्मा को मन किस प्रकार अहंकार से बाँधता है इसका वर्णन साहिब ने किया — गर्व (अहंकार) हर क्षण मस्तिष्क में बैठकर ‘कुटिलता’ कराता है। मनुष्य अपने पैरों को निहारता हुआ ऐंठकर चलता है। ‘ऐंठ ओर अकड़’ अभिमान की निशानी है, वह किसी के सामने विनम्र होकर झुकता नहीं है। मूँछों पर ताव देकर देखता है, अपने हाथों को औरों के कंधों पर रखता है। मन में मतवालापन दिखाता है। दूसरों से नीति विरुद्ध वचन बोलकर अपने बराबरी का किसी को नहीं मानता। गर्व में मनुष्य कहता है वह बहुत बड़े कुटुम्ब-खानदान का है। बहुत गर्व से अपने घर की बड़ाई करता है। अभिमानी झूठ और कपट में माहिर होता है, ‘हम-हम’ करके सब जगह घूमता है। किसी से सीधा नहीं बोलता। धन, कुल, विद्या, ज्ञान, सुन्दरता और बल का गर्व सबको दिखाता है। योगी भी योग का गर्व करके भूल जाता है कि बड़े-बड़े सिद्धों और योगेश्वरों को भी काल ने खाया है। जीव को बाँधने कालपुरुष का मायाजाल पूरी सृष्टि है। वाणी है —

कँचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।

मान बढ़ाई ईर्षा, दुरलभ तजनी यह॥

यह मन बड़ा ही निकृष्ट है, गन्दा है, गन्दे कार्यों में ही इसे मजा आता है। अमृत समान मीठा फल प्रदान करने वाले आत्म-कल्याण के कार्यों को तो अभिमान से त्याग देता है। जहर समान कड़वा फल प्रदान करने वाले अनात्म कार्यों से ही प्रेम करता है। मन को अन्तःकरण में घेरकर दबा लो, मार लो। जब भी यह गलत जगह भागे, गलत इच्छायें

करे तो गुरु के नाम का अँकुश लगाकर उसे ठीक जगह लगा दो।

यह मन नीचा मूल है, नीचा कर्म सुहाय।

अमृत छाड़ै मान करि, विषहिं प्रीति खाय॥

अहँकार से जीव कभी बाहर नहीं निकल पाता। अहँकार के परिवार में - पत्नि है 'निन्दा', पुत्र है 'बल' और पुत्री है 'बुद्धि'। इसलिए मनुष्य के पूरे जीवन को पाँच प्रकार के अहँकार, आत्मज्ञान से सदैव दूर रखते हैं। (1) धन का अहँकार, (2) सुन्दरता का अहँकार, (3) शरीर बल का अहँकार, (4) ज्ञान का अहँकार और (5) पद-प्रतिष्ठा का अहँकार। इनमें से किसी भी एकाधिक प्राप्ति से मनुष्य अहँकारवश अपने समान किसी को नहीं मानता। मन की इस शक्ति से मनुष्य अपने को एक शरीर ही मानता है, व्यक्तित्व तक ही सीमित रहता है। आत्मबोध से दूर रहकर कर्म करता हुआ कर्मबन्धनों और कर्मफल के आवागमन में फँसा रहता है। आत्मा पर मन के अधिकार की जीत अहँकार से होती है।

सत्यपुरुष से छल करके शून्य में त्रिलोकी सृष्टि बनाकर जीव जगत की रचना करने के कारण ही निरञ्जन का नाम कालपुरुष हुआ। यह वर्णन करते हुए कबीर साहिब ने शिष्य धर्मदास को समझाया कि इसी कारण **मन-बुद्धि-चित्त** के रूप में **काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहँकार** वृत्तियों की शक्तियों के साथ निरञ्जन जीवों में भी समाया है। इसी मन रूप निरञ्जन ने अमरलोक के मानसरोवर द्वीप में रहकर 64 चौकड़ी युग कठोर तपस्या कर हँस (आत्मायें) प्राप्त की थी।

निरञ्जन का नाम कालपुरुष हुआ!

निरञ्जन ने तीन लोक बना दिये, स्वर्ग, पाताल, मृत्युलोक रच डाले, पर सोचा कि तीन लोक का विस्तार कैसे करूँ। क्योंकि बीज नहीं है इसलिए शरीरों की रचना भी नहीं हो सकती। इस निर्जीव सृष्टि में जीव नहीं हैं, जैसे अमरलोक में हँस हैं इसमें नहीं हैं। यह सोच निरञ्जन ने पुनः

एक पैर पर खड़े होकर मानसरोवर में 64 युगों तक परमपुरुष का ध्यान किया। सजीव तीन लोक की सृष्टि की इच्छा से कठोर ध्यान किया।

पुरुष ध्यान पुनि कीन्ह निरञ्जन। युग अनेक किय संयम॥
स्वार्थ जानि सेवा तिन लाई। करि रचना बैठे पछताई॥
धर्मराय तब कीन्ह बिचारा। कैसे लो त्रयपुर विस्तारा॥
स्वर्ग मृत्यु कीन्हों पाताला। बिना बीज किमि कीजै ख्याला॥
कौन भाँति कस करब उपाई। किहि विधि रचों शरीर बनाई॥
कर सेवा माँगों पुनि सोई। तिहुँ पुर जीवित मेरो होई॥
एक पाँव तब सेवा कियऊ। चौंसठ युग लों ठाढ़े रहेऊ॥

दयानिधि सत्यपुरुष ने निरञ्जन की घोर ध्यान सेवा के वश होकर पुनः 'सहज' को बुलाया और कहा हे सहज! जाओ निरञ्जन अब क्या चाहता है जो माँगे दे दो। उससे कहना की छल त्याग कर वचन के अनुरूप रचना करे। तब परमपुरुष की आज्ञा से निरञ्जन के पास पहुँचकर 'सहज' ने कहा — हे निरञ्जन! तुम्हें परमपुरुष ने तीन लोकों का राज्य दिया। कूर्म जी के पेट से जो निकला वो भी तुमने ले लिया। तुमने जो चाहा परमपुरुष ने सब दे दिया; तुमने अपने अलग राज्य की रचना कर ली। अब किस कारण से ध्यान-सेवा कर रहे हो।

चले सहज सिरनाय, जबहिं पुरुष आज्ञा कियो।
तहवाँ पहुँचे जाय, जहाँ निरञ्जन ठाढ़ रहो॥
देखत सहज धर्म हरषाना। सेवा बस पुरुष तब जाना॥
तब सहज अस भाषे लीन्हा। सुनहु धर्म तोहि पुरुष सब दीन्हा॥
कूर्म उदर सो जो कछु आवा। सो तोहि देन पुरुष फरमावा॥
तीन लोक राज तोहि दीन्हा। रचना रचहु होहु जनि भीना॥
कहै सहज सुनहु धर्मराया। केहि कारण अब सेवा लाया॥

निरञ्जन ने विनती कर 'सहज' से कहा कि मैं सेवक किसी ओर को नहीं जानता। परमपुरुष से मेरी ओर से विनती कर कहो, निशदिन उनका

ध्यान करने वाला सेवक मुझे जानें। मुझे खेत और बीज दोनों प्रदान करें नहीं तो रचना कैसे रचूँगा। निरञ्जन की यह सब माँग 'सहज' ने जाकर परमपुरुष को बताई। परमपुरुष ने तुरन्त इच्छा करके एक अष्टांगी कन्या (आद्यशक्ति) उत्पन्न की जिसकी आठ भुजायें थीं। अष्टांगी ने पुरुष के बांय तरफ खड़े होकर शीश झुकाकर पूछा हे परमपुरुष ! मुझे क्या आज्ञा है।

तबै निरञ्जन विनती लायी। कैसे रचना रचूँ बनायी॥

पुरुषहिं कहो जोरि युग पानी। मैं सेवक दुतिया नहिं जानी॥

पुरुष सो विनती करो हमारा। दीजे खेत बीज निज सारा॥

मैं सेवक दुतिया नहिं जानू। ध्यान पुरुष का निशदिन आनू॥

सहज कह्यो पुनि पुरुषहिं जाई। जस कछु कह्यो निरञ्जन राई॥

इच्छा कीन पुरुष तेहि बारा। अष्टांगी कन्या उपचारा॥

अष्ट बाहु कन्या होय आई। बायें अंग सो ठाढ़ रहाई॥

माथ नाई पुरुष सो कहई। अहो पुरुष आज्ञा कस अहई॥

परमपुरुष ने कहा — हे पुत्री ! तुम्हें जो वस्तु दे रहा हूँ उसे संभाल कर धर्म (निरञ्जन) के पास जाओ और उसके साथ मिलकर उत्पत्ति करो। परमपुरुष ने फिर अनन्त बीज रूप हँस (आत्मायें) देकर कहा — मानसरोवर में निरञ्जन के साथ सत्य-सृष्टि करो। वहाँ जीवात्मा का नाम सोहंग होगा और इनके समान कोई दूसरा सोहंग जीव नहीं होगा। सोहंग जीवात्मा का ही नाम है जो परमपुरुष का अंश है। निरञ्जन की सेवा तप के वश होकर परमपुरुष ने अत्यन्त सुन्दर शोभायुक्त अष्टांगी कन्या बनाई। उसके साथ मानसरोवर में ही आत्माओं को सुखसागर में रखने की रचना करने भेजा। सत्यसृष्टि रचने आद्यशक्ति कन्या को जीवात्मायें सौंपी अर्थात् आत्माओं (हँसों) को शरीरों में डालने की चौरासी लाख जीवों में डालने की आज्ञा नहीं दी। आद्यशक्ति ने परमपुरुष को प्रणाम कर मानसरोवर प्रस्थान किया।

निरञ्जन तप करता हुआ खड़ा था इसलिए परमपुरुष ने तुरन्त 'सहज'

को बुलाकर कहा कि निरञ्जन के पास जाओ और बताओ कि जो वस्तु तुमने चाही थी, वो तुम्हें भेज दी है। मूल-बीज तुम तक पहुँचा दिया है अब मानसरोवर जाओ और जैसी सृष्टि चाहते हो करो।

तबहीं पुरुष वचन परगासा। पुत्री जाहु धरम के पासा ॥
 देहुँ वस्तु सो लेहु सम्हारी। रचहु धर्म मिलि उत्पत्ति वारी ॥
 दीन्हो बीज जीव पुनि सोई। नाम सुहंग जीव कर होई ॥
 जीव सोहंगम दूसर नाहीं। जीव सो अंश पुरुष को आही ॥
 अष्टांगी कन्या हती जेहिं रूप शोभा अति बनी।
 जाहु कन्या मानसरोवर करहु रचना अति घनी ॥
 यह सब दीन्हो आदि कुमारी। मानसरोवर चलि भई नारि ॥
 ततछिन पुरुष सहज टेरावा। धावत सहज पुरुष पहिं आवा ॥
 जाही सहज धरम यह कहेहू। दीन्ही वस्तु जस तुम चहेहू ॥
 मूल बीज तुम पहुँ पठवावा। करहु सृष्टि जस तुम मन भावा ॥
 मानसरोवर जाहि रहाहू। ताते होई हैं सृष्टि उराहू ॥

आज्ञा पाकर 'सहज' ने निरञ्जन के पास जाकर परमपुरुष के वचन कहे तो निरञ्जन 'मानसरोवर' में आकर बैठ गया। जब उसने आद्यशक्ति को आते देखा तो बड़ा प्रसन्न हुआ। आद्य-कन्या अनन्त कला और सौन्दर्य से परिपूर्ण थी, सो निरञ्जन उसे अंग-अंग देखकर मग्न हो गया, कामुक हो गया। उसने कन्या को एक हाथ में पैर और एक हाथ में शीश की तरफ से पकड़कर निगल लिया। जैसे ही निरञ्जन ने उसे निगला तो कन्या ने परमपुरुष को पुकारा कि काल-निरञ्जन ने मुझे खा लिया है। फिर निरञ्जन ने सहज को भी वहाँ से भगा दिया क्योंकि तप के कारण उसमें बहुत ताकत आ गई थी।

चले सहज तहवाँ तब आये। धर्म धीरजहूँ ठाढ़ रहाये ॥
 कहेउ सुवचन पुरुष को जबहीं। धर्मराय सिर नायो तबहीं ॥
 पुरुष वचन सुन तबही गाजा। मानसरोवर आन विराजा ॥

आवत कामिनि देख्यो जबही । धर्मराय मन हरष्यो तबही ॥
 काल अनन्त अंत कछु नाहीं । काल मगन है निरखत ताही ॥
 निरखत धरम सु भयो अधीरा । अंग अंग सब निरख शरीरा ॥
 धर्मराय कन्या कह ग्रासा । काल स्वभाव सुनो धर्मदासा ॥
 कीनो ग्रास काल अन्याई । तब कन्या चित विस्मय लाई ॥
 ततछन कन्या कीन्ह पुकारा । काल निरञ्जन कीन्ह अहारा ॥
 तबहि धर्म सहज लग आई । सहज शून्य तब लीन्ह छुड़ाई ॥

आद्यकन्या की पुकार सुनकर परमपुरुष को ध्यान आया कि इसने पहले भी कूर्म का पेट फाड़कर पाँच तत्व का बीज निकाला था और कूर्म के तीन शीश खा लिये थे; अब इसने आद्यशक्ति को निगल लिया है। परमपुरुष को बुरा लगा, उन्होंने निरञ्जन को श्राप दे दिया कि एक लाख जीवों को तू प्रतिदिन निगलेगा तो भी तेरा पेट नहीं भरेगा और सवा लाख जीव रोज उत्पन्न करेगा। परमपुरुष ने यह भी विचार किया कि निरञ्जन को मिटा दिया जाए क्योंकि यह तो जीवों को बड़ा कष्ट देगा। फिर ध्यान आया कि मैंने इसे सत्रह असंख्य चौकड़ी युग का राज्य दिया है, मिटा दिया तो मेरा शब्द कट जाएगा और फिर सभी सोलह-पुत्रों को एक नाल में पिरोया है; यदि एक को मिटाया तो सभी मिट जायेंगे। इसलिए परमपुरुष ने निरञ्जन को यह भी श्राप दिया कि अब वह मेरे देश अमरलोक में नहीं आ सकेगा, मेरा दर्शन नहीं कर सकेगा। इसी श्राप के बाद से निरञ्जन का नाम कालपुरुष अथवा काल निरञ्जन हुआ।

पुरुष ध्यान कूर्म अनुसार । मोसन काल कीन्ह अधिकारा ॥
 तीन शीश मम भच्छन कीन्हो । हो सत्पुरुष दया भल चीन्हो ॥
 यही चरित्र पुरुष भल जानी । दीनहो शाप सो कहों बखानी ॥
 लच्छ जीव नित ग्रासन करहू । सवालच्छ नितप्रति बिस्तरहू ॥
 पुनि कीन्ह पुरुष तिवान, तिहि छन मेटि डारो काल हो ।
 कठिन काल कराल जीवन, बहुत करइ बिहाल हो ॥

यहि मेटत सबै मिटिहैं, बचन डोल अडोलसां,
डोले बचन हमार, जो अब मेटा धरम को,
वचन करो प्रतिपाल, देश मोर अब ना लहैं ॥

काल निरञ्जन को अमरलोक से निष्कासन का श्राप देने के बाद परमपुरुष ने योगजीत [अमरलोक में कबीर साहिब का नाम] को स्वयं में से प्रकट किया। उन्होंने स्वयं को मथकर ज्ञानीपुरुष को (कबीर साहिब) को निकाला और कहा कि निरञ्जन को मानसरोवर से निकाल दो। अब वो मेरे देश में कभी नहीं आएगा। उसके पेट में आद्यशक्ति है, उससे कहना कि मेरा ध्यान करके काल निरञ्जन के पेट को फाड़कर बाहर आ जाए। इससे काल निरञ्जन ने जो कूर्म का पेट फाड़ा था उसे उसका फल मिल जाए। काल निरञ्जन से कहना कि वो स्त्री अब तुम्हारी हो गई, तुमने जहाँ स्वर्ग लोक, मृत्युलोक और पाताल लोक की रचना की है, वहीं जाकर रहो।

जोगजीत कहँ तबहि बुलावा। धर्म चरित सब कहि समुझाया ॥
जौगजीत तुम बेगि सिधारो। धर्मराय को मारि निकारो ॥
मानसरोवर रहन न पावै। अब यहि देस काल नहिं आवै ॥
धर्म के उदर माहिं है नारी। तासो कहो निज शब्द सम्हारी ॥
उदर फारि के बाहर आवे। कूर्म उदर विदार फल पावै ॥
धर्मराय सों कहो विलोई। वहै नारि अब तुम्हरी होई ॥
जाए रहो धर्म वहि देशा। स्वर्ग मृत्यु पाताल नरेशा ॥

परमपुरुष की आज्ञा पाकर योगजीत मानसरोवर आए। जब निरञ्जन ने योगजीत को देखा तो क्रोध से भयंकर होकर पूछा — कौन हो और यहाँ क्यों आए हो? योगजीत ने कहा तुमने आद्यशक्ति को निगल लिया है, परमपुरुष की आज्ञा से मैं यहाँ से तुम्हें निकालने आया हूँ। योगजीत ने आद्यकन्या से ध्यान में कहा कि इसके पेट में क्यों बैठी हो, परमपुरुष की सुरति करके इसका पेट फाड़कर बाहर आ जाओ।

जोगजीत चल भे सिरनाई । मानसरोवर पहुँचे जाई ॥
 जोगजीत को देखा जबहीं । अति भो काल भयंकर तबहीं ॥
 पूछा काल कौन तुम आहू । कौन काज तुम यहाँ सिधाहू ॥
 जोगजीत अस कहे पुकारी । अहो धर्म तुम ग्रासेहु नारी ॥
 आज्ञा पुरुष दीन्ह यह मोही । इहिते बेगि निकारो तोही ॥
 जोगजीत कन्या को कहिया । नारि काहे उदर महुँ रहिया ॥
 उदर फारि अब आवहु बाहर । पुरुष तेज सुमिरो तोहि ठाहर ॥

जोगजीत की बात सुनकर काल निरञ्जन (धर्म) हृदय तक क्रोधित होकर लड़ने के लिए सामने आ गया । जोगजीत ने तब परमपुरुष का ध्यान करके उनके प्रताप तेज को हृदय में धारण किया । उसी समय परमपुरुष की आज्ञा हुई कि सुरति फेंक कर काल-कराल को मारो । जोगजीत ने वैसा ही किया और काल निरञ्जन बेहोश होकर गिर पड़ा । तब जोगजीत ने उसकी भुजा पकड़कर उसे अमरलोक से नीचे शून्य में फेंक दिया ।

सुनिके धर्म क्रोध उर जरेऊ । जोगजीत सो सन्मुख भिरेऊ ॥
 जोगजीत तब कीन्हे ध्याना । पुरुष प्रताप तेज उर आना ॥
 पुरुष आज्ञा भई तेहि काला । मारहु सुरति लिलार कराला ॥
 जोगजीत पुनि तैसो कीन्हा । जस आज्ञा पुरुष तेहि दीन्हा ॥
 गहि भुजा फटकार दीन्हों, परेउ लोक ते न्यार हो ।
 भयो त्रसित पुरुष डरते, बहुरि उठेउ सम्हार हो ॥

कालपुरुष द्वारा जीव जगत की रचना

परमपुरुष के भय से त्रसित हो काल निरञ्जन डरते हुए संभल कर उठा तो आद्य-कन्या उसके पेट से बाहर आ गई । निरञ्जन को देख कन्या डरने लगी, सोचने लगी यहाँ कैसे आ गई । अब अपने देश में नहीं जा पाऊँगी । आद्यशक्ति शंका में काल निरञ्जन से त्रसित और अधिक डर

गई। शीश नवाकर वहीं पास में खड़ी हो गई।

निरसि कन्या उदरते, पुनि देख धर्महि अतिडरी॥
अब नहिं देखों देस वह, कहो कौन विधि कहँवा परी॥
कामिनी रही सकाय, त्रासित काल डर अधिका॥
रही सो सीस नवाय, आस पास चितवत खड़ी॥
निरञ्जन ने आदि शक्ति से कहा — हे कुमारी! मुझ से मत डरो;
परमपुरुष ने तुम्हें मेरे काम के लिए ही रचा है, इसलिए दोनों मिलकर
राज करते हैं। मैं पुरुष और तुम मेरी नारी हो; मुझसे मत डरो।
कहे धर्म सुनु आदि कुमारी। अब जनि डरपो त्रास हमारी॥
पुरुष रचा तोहि हमरे काजा। इक मति होय करहु उपराजा॥
हम हैं पुरुष तुमहिं हो नारी। अब जनि डरपो त्रास हमारी॥

आद्य शक्ति ने कहा कि यह कैसी बात बोल रहे हो। पहले नाते से तो तुम मेरे बड़े भाई हो चुके हो, क्योंकि परमपुरुष के बच्चे हैं। दूसरे नाते से मैं तुम्हारी पुत्री हो गई हूँ, क्योंकि तुमने मुझे पेट में डाल लिया था और वहीं से मैं निकली हूँ; इसलिए तुम मेरे पिता हो गये हो। अब तुम मुझे निर्मल दृष्टि से देखो अन्यथा तुम्हें पाप लगेगा।

कहे कन्या कैसे बोलहु बानी। भ्राता जेठ प्रथम हमजानी॥

कन्या कहै सुनो हो ताता। ऐसी विधि जनि बोलहु बाता॥

अब मैं पुत्री भई तुम्हारी। ताते उदर माँझ लियो डारी॥

जेठ बँधु प्रथमहि के नाता। अब तो अहो हमारे ताता।

निरमल दृष्टि अब चितवहु मोही। नहिं तो पाप होय अब तोही॥

निरञ्जन ने कहा — हे भवानी! सुनो तुम मेरी सहभागिनी हो, मैं पाप-पुण्य से नहीं डरता; क्योंकि पाप-पुण्य का कर्ता मैं ही हूँ। पाप और पुण्य दोनों मुझ से ही हैं इसलिए यह हिसाब मुझसे कोई अन्य नहीं लेने वाला है। इसलिए मैं तुम्हें समझाता हूँ कि तुम मेरी सीख को अपने शीश पर चढ़ा लो। परमपुरुष ने तुम्हें मुझको दिया है, इसलिए हे भवानी! तुम

मेरा ही कहना मानो। आगे मैं पाप-पुण्य कर्मों का जाल ही फैलाऊँगा और जो इनमें उलझा रहेगा, हमारा ही रहेगा।

कहे निरञ्जन सुनो भवानी। यह मैं तोहि कहों सहिदानी॥

पाप पुण्य डर हम नहि डरता। पाप पुण्य के हमहीं करता॥

पाप पुण्य हमहीं से होई। लेखा मोर न लेहै कोई॥

पाप पुण्य हम करम पसारा। जो बाझे सो होय हमारा॥

ताते तोहि कहों समुझाई। सिख हमारे लो सीस चढ़ाई॥

पुरुष दीन तोहि हम कहँ जानी। मानहु कहा हमार भवानी॥

काल निरञ्जन की ऐसी बातें सुन आद्यशक्ति हँसते हुए एकमत होकर उसके रंग में रंग गई। हर्ष के साथ मीठी वाणी बोलते हुए बताया कि नारी गुण निम्न-बुद्धि है रति की विधि करना ही ठानेगी। यह रहस्य वचन सुनकर धर्म (कालनिरञ्जन) बहुत प्रसन्न हुआ और उसके मन में सम्भोग की इच्छा हुई। दोनों ने साथ रहने का निश्चय कर लिया।

विहँसी कन्या सुन अस बाता। इकमति होय दोई रंगराता॥

हरस वचन बोली मृदु बानी। नारी नीच बुधि रति विधि ठानी॥

रहस वचन सुन धरम हरषाना। भोग करन को मन में आना॥

आद्यशक्ति कन्या को 'भग' (योनिद्वार) नहीं था। काल निरञ्जन ने अपना चरित्र दिखाया और नाखून से घात करके क्षण में भगद्वार बना दिया। इसतरह उत्पत्ति का घाट बना दिया। नख की रेख से उस भग स्थान से रक्त बह निकला। यही सब का खास आरम्भ है। आदि उत्पत्ति की यह काल निरञ्जन लीला कोई नहीं जानता। काल निरञ्जन द्वारा फिर तीन बार आद्यकन्या से रतिक्रिया की गई। कूर्म जी के पेट से पाँच तत्व लेकर निरञ्जन ने उनके तीन शीश खा लिये थे। इसीलिए तीन बार रतिक्रिया से ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न हुए और उक्त तीन शीशों से रजगुण-ब्रह्मा जी, सत्गुण-विष्णु जी और तमगुण-शिवजी के हुए। इस तरह पाँच तत्व और तीन गुणों से सृष्टि और जीवों की रचना काल-

निरञ्जन ने की है। कन्या और काल ने एकमत हो भोग-विलास किया।

भग नहिं कन्या के हती, अस चरित कीन्ह निरञ्जना॥
 नख घात किये भग द्वार ततछिन, घाट उत्पत्ति गंजना॥
 नख रेष शोनित चला, तिहुँ को सब खास आरंभनी॥
 आदि उत्पत्ति सुनुहु धर्मनि, कोउ नहिं जानत जम मनी॥
 त्रियवार कीन्ही रति तबै, भये ब्रह्मा विष्णु महेश हो॥
 जेठे विधि विष्णु लघु तिहि, तीजे शम्भू शेष हो॥
 उत्पत्ति आदि प्रकाश, यह विधि तेहि प्रसंग भो॥
 कीन्हो भोग विलास, इकमति कन्या काल है॥
 तेहि पीछे ऐसा भो लेखा। धर्मदास तुम करौ विवेका॥
 अग्नि पवन जल महि अकाशा। कूर्म उदरते भयो प्रकाशा॥
 पाँचों अंस ताहिसन लीन्हा। गुण तीनों सीसन सों कीन्हा॥
 यहि विधि भये तत्व गुण तीनों। धर्मराय तब रचना कीनो॥

प्रथम रजगुण के साथ पाँच तत्व दिये, जिससे ब्रह्मा जी हुए। सत्गुण के साथ पाँच तत्व दिये तो विष्णु जी हुए और तुमगुण के साथ पाँच तत्व देने से शिवजी हुए। इस तरह पाँच तत्व और तीन गुणों से तीनों शरीरों की रचना की। इसप्रकार काल निरञ्जन ने अपने ही अंश से तीनों को उत्पन्न किया।

गुन तत सम कर देविहिं दीन्हा। आपन अंस उत्पन्न कीन्हा॥
 बुन्द तीन कन्या भग डारा। ता संग तीनो अंस सुधारा॥
 पाँच तत्व गुण तीनों दीन्हा। यहि विधि जग की रचना कीन्हा॥
 प्रथम बुन्द ते ब्रह्मा भयऊ। रजगुण पंच तत्व तेहि दयऊ॥
 दूजो बुन्द विष्णु जो भयऊ। सत्गुण पंच तत्व तिन पयऊ॥
 तीजे बुन्द रुद्र उत्पाने। तमगुण पंच तत्व तेहि साने॥
 पंच तत्व गुण तीन खमीरा। तीनों जन को रच्यो शरीरा॥

इन्हीं आदि पाँच तत्व और तीन गुणों के कारण बारम्बार प्रलय होता

है, कबीर साहिब ने शिष्य धर्मदास को समझाया कि इस आदि भेद को कोई नहीं जानता। इसके पश्चात काल निरञ्जन ने आद्यशक्ति से कहा कि हे कामिनी ! ध्यान देकर सुनो जो मैं कह रहा हूँ उसे गाँठ बाँध लो। जीव और बीज तुम्हारे पास है, तीनों पुत्र भी तुम्हें सौंपता हूँ। इन सबसे तुम रचना करना। तीनों पुत्रों के साथ तुम तीनों लोकों में राज करो और मैं निराकार रूप हो शून्य में समाऊँगा तथा 'मन' बनकर हरेक जीव के साथ रहूँगा। काल निरञ्जन ने आद्यशक्ति को आज्ञा दी कि तुम मेरा भेद किसी से नहीं कहना। तीनों पुत्र भी मेरा दर्शन नहीं कर सकेंगे चाहे मुझे खोजते हुए कितने भी जन्म गवाँ दें। मेरा भेद कोई नहीं जान पाएगा। ऐसा दृढ़ मत स्थापित कर दूँगा कि कोई प्राणी परम पुरुष का भेद नहीं पा सकेगा। जब ये तीनों पुत्र बड़े हो जायें तो इन्हें समुद्र मंथन के लिए भेजना।

कहै धर्म कामिनी सुन बानी। जो मैं कहूँ लेहू सो मानी॥

जीव बीज आहै तुव पासा। सो ले रचना करहू प्रकाशा॥

कहै निरञ्जन पुनि सुनु रानी। अब अस करहू आदि भवानी॥

त्रय सुत सौँप तोहि दीना। अब हम पुरुष सेवा चित लीन्हा॥

राज करहु तुम लै तिहुँ वारा। भेद न कहियो काहु हमारा॥

मोर दरश त्रय सुत नहिं पैहैं। जो मोहि खोजत जन्म सिरै हैं॥

ऐसा मता दृढ़ै हो जानी। पुरुष भेद नहिं पावै प्राणी॥

त्रयसुत जबहिं होहिं बुधिवाना। सिन्धु मंथन दे पठहु निदाना॥

काल निरञ्जन गुप्त होकर शून्य में समा गया और 'मन' रूप में सबके साथ हो गया। यही काल स्वयं चाल चलकर जीवों से कर्म करवाता है और स्वयं ही उन्हें कष्ट देता है। यही 'मन' परमपुरुष का ध्यान नहीं करने देता है। ध्यान में 'मन' ही आप प्रगट हो जाता है।

कहेउ बहुत बुझाय देविहि, गुप्त भये तब आहि हो॥

शून्य गुफहि निवास कीन्हो, भेद लहको ताहि हो॥

वह गुप्त भयो पुनि संग सबकै, मन निरञ्जन जानिये॥

मन पुरुष ध्यान उच्छेद देवे, आपु परगट आनिये ॥

जीव सतावे काल, नाना कर्म लगाय के ॥

आप चलावे चाल, कष्ट देय पुनि जीव को ॥

जब तीनों बालक कुछ बड़े हुए तो माता ने समुद्र मंथन के लिये जाने को कहा, पर बच्चे खेलने में मग्न रहे; समुद्र मंथन को नहीं गए। इस अंतराल में काल निरञ्जन ने एक खेल किया, उसने योग द्वारा अतिवेग से पवन उत्पन्न की और जब उसका त्याग किया तो स्वाँस के साथ वेद बाहर निकले अर्थात् कालनिरञ्जन ने वायु में वेद के शब्द किये, यह भेद भी कोई विरला ही जानता है। अर्थात् मूलतः वेद कोई लिखी पुस्तक नहीं है। वेद ने, निरञ्जन (निराकार) की स्तुति की और आज्ञा माँगी तो निरञ्जन ने कहा — जाओ समुद्र में समा जाओ; जब मंथन हो तब जिसे मिलो, उसी के पास चले जाना। निरञ्जन ने आकाशवाणी की, ज्योति दिखाई पर वेद ने उसका रूप नहीं देखा। इसलिए वेद निराकार के लिए भी कहता है कि उसका पूरा भेद नहीं पा रहा हूँ। ... तो जब वेद चले गए तो निरञ्जन ने 'तेज' उत्पन्न करके उसे भी समुद्र में समाने को कहा। फिर तेज के बाद 'विष' उत्पन्न करके उसे भी समुद्र में समाने भेज दिया। वेद जब समुद्र मध्य आकर समा गए तो निरञ्जन ने ध्यान में आद्यशक्ति से कहा कि समुद्र मंथन में विलम्ब क्यों हो रहा है? हमारे वचन पर ध्यान दो और जल्दी तीनों पुत्रों को समझाकर और आशीर्वाद देकर समुद्र मंथन के लिए भेजो। तब आद्यशक्ति ने तीनों पुत्रों को समुद्र मंथन के लिए भेजा, समझाया कि शीघ्र जाओ वहाँ समुद्र से कुछ वस्तु पाओगे। आद्यशक्ति को ध्यान दिलाने के बाद स्वयं निरञ्जन भी जाकर समुद्र में समा गए। माता की आज्ञा पाकर ब्रह्मा मान सहित आगे-आगे चले और पीछे-पीछे दोनों भाई विष्णु जी तथा शिव जी भी चले।

त्रय बालक जब भये सयाने। पठये जननी सिंधु मथाने ॥

बालक मातै खेल खिलारी। सिंधु मंथन नहि गयऊ खरारी ॥

तेहि अंतर इक भयो तमासा । सो चरित्र बूझो धर्मदासा ॥
 धान्यो योग निरञ्जन राई । पवन आरंभ कीन्ह बहुताई ॥
 त्यागो पवन रहित पुनि जबही । निकसेउ वेद स्वास संग तबही ॥
 स्वास संग आयउ सो वेदा । बिरला जन कोई जाने भेदा ॥
 अस्तुति कीन्ह वेद पुनि ताहाँ । आज्ञा का मोहि निरगुन नाहाँ ॥
 कह्यो जाय करू सिंधु निवासा । जेहि भेंटे जैहो तिहि पासा ॥
 उठी आवाज रूप नहिं देखा । जोति अगम दिखलावत भेखा ॥
 चलेउ वेद तहँवा को जाई । जहँवा सिंधु रचा धर्मराई ॥
 पहुँचे वेद तब सिंधु मँझारा । धर्मराय तब युक्ति विचारा ॥
 गुप्त ध्यान देविहिं समुझावा । सिंधु मंथन कहँ कस विलमावा ॥
 पठवहु बेगि सिंधु त्रय बारा । दृढ़कै सोचहु बचन हमारा ॥
 बहुरि आप पुनि सिंधु समाना । देवी कीन्ह मंथन अनुमाना ॥
 तिहुँ बालक कहँ कह समुझाई । आशिष दे पुनि तहाँ पठाई ॥
 पैहो वस्तु सिंधु कै माहीं । जाहु बेगि तीनों सुत ताहीं ॥
 चलिभौ ब्रह्मा मान सिखाई । दोउ लहुरा पुनि पाछे जाई ॥

त्रिदेवों को सृष्टि के संचालन और जीवोत्पत्ति हेतु मिलीं शक्तियाँ

निरञ्जन के तीनों पुत्र समुद्र के पास जाकर खड़े हो गए और एक-दूसरे को देखते हुए मंथन पर विचार करने लगे । फिर तीनों ने जाकर समुद्र मंथन किया तो तीन वस्तुयें तीनों भाइयों ने पाई । ब्रह्मा को वेद मिले, विष्णु को तेज मिला और शिव को विष मिला । भेंट में मिलीं वस्तुयें लेकर तीनों भाई हर्षित होकर माता के पास आए । माता के पास आकर तीनों ने अपनी-अपनी वस्तु बताई । माता ने आज्ञा दी कि जो वस्तु जिसे मिली है वो अपने पास रख लो ।

गए सिंधु के पास, भये ठाढ़ तीनों जने ।
 युक्ति मंथन परकास, एक एक को निरखहीं ॥

तीनों कीन्ह मंथन तब जाई । तीन वस्तु तीनों जन पाई ॥
 ब्रह्मा वेद तेज तेहि छोटा । लहुरा तासु मिले विष खोटा ॥
 भेट वस्तु त्रय तीनों भाई । चलि भये हर्ष कहत जहँ माई ॥
 माता पहुँ आये त्रय बारा । निज निज प्रगट अनुसार ॥
 माता आज्ञा कीन्ह परकासा । राखु वस्तु तुम निज पासा ॥

दूसरी बार पुत्रों को फिर आद्यशक्ति ने आज्ञा दी कि समुद्र मंथन को जाओ और जो जिसे मिले वो अपने पास रख ले । शक्ति ने स्वयं में से तीन कन्याओं की उत्पत्ति की और उन्हें भी समुद्र में समाने को कहा । तीनों भाईयों के समुद्र पर पहुँचने के पूर्व वे तीनों कन्यायें समुद्र में समा गई । तीनों पुत्रों में से किसी को यह भेद मालूम नहीं पड़ा । जब तीनों भाईयों ने समुद्र मंथन किया तो तीनों कन्यायें उन्हें मिली जिन्हें लेकर तीनों माता के पास आए । माता ने कहा कि हे पुत्रों ! यह सब तुम्हारे कार्य से हुआ, इसलिए एक-एक कन्या तीनों को दे दी । कहा — ब्रह्मा सावित्री तुम लो, लक्ष्मी — विष्णु को दी और पार्वती शंकरजी को दे; संग रहकर भोगने की आज्ञा दी । तीनों पुत्रों ने शीश नवाकर अपनी-अपनी स्त्री के साथ ऐसे आनंदित हो गए जैसे चकोर को रात्रि का चाँद मिल गया हो । तीनों भाई 'काम' के वशीभूत हो उनमें रम गये जिससे देवताओं और दैत्यों की उत्पत्ति हुई । कबीर साहिब शिष्य धर्मदास को समझाते हैं कि ऐसे माता ही अंश रूप होकर नारी हो गई । आगे चलकर ब्रह्मा जी और विष्णु जी से देवताओं की उत्पत्ति हुई और शिवजी से दैत्यों की उत्पत्ति हुई ।

पुनि तुम मथहु सिंधु कहँ जाई । जो जेहि मिले लेउ सो भाई ॥
 कीन्ह चरित अस आदि भवानी । कन्या तीन कीन्ह उत्पानी ॥
 कन्या तीन उत्पान्यो जबहीं । अंसवारि महँ नायो सबहीं ॥
 पढ्यो सिंधु माहिं पुनि ताहीं । त्रयसुत मर्म सो जानत नाहीं ॥
 पुनि तिन मथन सिंधु को कीन्हा । भेंट्यो कन्या हर्षित है लीन्हा ॥
 कन्या तीनहु लीन्हे साथी । आ जननी कहँ नायउ माथा ॥

सब माता के आगे कीन्हा । माता बाँटि तिन्हन कहँ दीन्हा ॥
 माता कहे सुनहु सुत मोरा । यह तो काज भये सब तोरा ॥
 एक एक बाँटि तीनहु को दीन्हा । करहु भोग अस आज्ञा कीन्हा ॥
 सावित्री ब्रह्मा तुम लेऊ । है लक्ष्मी विष्णु कहँ देऊ ॥
 पारवती शंकर कहँ दीन्ही । ऐसी माता आज्ञा कीन्ही ॥
 तीनउ जन लीन्ही सिर नाई । दीन्ह अद्या जस भाग लगाई ॥
 पाई कामिनी भये अनंदा । जस चकोर पाये निशि चंदा ॥
 काम वसी भए तीनों भाई । देव दैत दोनों उपजाई ॥
 धर्मदास परखो यह बाता । नारी भयी हती सो माता ॥

पुनः तीसरी बार माता ने पुत्रों से कहा कि तीनों भाई फिर से समुद्र मंथन के लिए जाओ। अब विलंब नहीं करना और वहाँ जो जिसे मिले वह ले लेना। तीनों भाईयों ने माता को शीश नवाकर गए और बिना देर लगाये समुद्र मंथन किया। पहले वेद निकला जो ब्रह्मा जी ने लिया। ऐसे चौदह रतन की खानि निकली तो विष्णु जी को अमृत और शिवजी को विष मिला। तीनों माता के पास आए तो आद्यशक्ति ने आज्ञा दी कि तीनों भाई सृष्टि रचो। जीवों की सृष्टि रचने आद्यशक्ति ने अण्डज खानि उत्पन्न की और पिण्डज खानि ब्रह्मा जी ने रची। उष्मज खानि विष्णु जी ने बनाई और शिवजी ने अस्थावर खानि का विस्तार किया। इस तरह चौरासी लाख योनियों की रचना की गई और जल-थल बाँट दिया।

अस्थावर खानि एक ही तत्व जल से निर्मित हुई जिसमें 9 लाख योनियाँ जल जीवों की हैं। उष्मज खानि दो तत्वों वायु और अग्नि से निर्मित हुई जिसमें 27 लाख जीव योनियाँ कीट-पतंगें हैं। अण्डज खानि तीन तत्वों — जल, हवा और अग्नि से निर्मित हुई जिसमें 14 लाख जीव योनियाँ हैं। पिण्डज खानि में चार तत्व — पृथ्वी, अग्नि, जल और वायु से निर्मित हुई जिसमें 30 लाख जीव योनियाँ हैं। पिण्डज खानि में ही 4 लाख मनुष्य योनियाँ पाँचों तत्वों से निर्मित हैं। इनमें अधिक ज्ञान के

कारण मनुष्य ही स्वर्ग और परमपद मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं, अन्य नहीं।

माता बहुरि कहे समुझाई । अब फिर सिंधु मथो तुम जाई ॥
 जो जेहि मिलै लेहु सो जाई । अब जनि करो विलंब तुम भाई ॥
 त्रय सुत चले माथ नवायी । जो कछु कहेउ करब हम जाई ॥
 मथ्यो सिंधु कछु विलंब न कीन्हा । मिला वेद सो ब्रह्मा लीन्हा ॥
 चौदह रतन की निकसी खानि । ले माता पे पहुँचे आनी ॥
 तीनहु बन्धु हरषित ह्वै लीन्हा । विष्णु सुधा पायउ हर विष दीना ॥
 यह सब द्वंद बाद ह्वै गयऊ । तब पुनि जग की रचना भयऊ ॥
 चौरासी लख योनिन भयऊ । चार खानि चारहु निर्माऊ ॥
 पुनि माता अस वचन उचारा । रचहु सृष्टि तुम तीनों बारा ॥
 अण्डज उत्पत्ति कीन्हा माता । पिण्डज ब्रह्मा कर उत्पाना ॥
 उष्मज खानि विष्णु व्यवहारा । शिव अस्थावर कीन्ह पसारा ॥
 खानि अण्डज तीन तत्व हैं, अप वायु अरू तेज हो ।
 अस्थावर खानि एक तत्वहि, तत्व जल का थेंग हो ॥
 उष्मज तत हैं दोय, वायु तेज सम जानिये ।
 पिण्डज चारहिं होय, पृथ्वी तेज अप वायु सम ॥
 पिण्डज नर की देह संवारा । तामें पाँच तत्व विस्तारा ॥
 ताते ज्ञान होय अधिकाई । गहे नाम सत्य लोकहिं जाई ॥
 नौ लख जल के जीव बखानी । चौदह लाख पक्षी परवानी ॥
 किरम कीट सत्ताइस लाख । तीस लाख पिण्डज भाखा ॥
 चतुर लक्ष मानुष परमाना । मानुष देह परम पद जाना ॥
 और योनि परिचय नहिं पावे । कर्म बँध भव भटका खावे ॥

कबीर साहिब ने काल निरञ्जन की उत्पत्ति का भेद और सृष्टि सहित जीव रचना का रहस्य बताते हुए समझाया कि जीवों में ज्ञान-चेतना कम ज्यादा क्यों है ? कहा — यद्यपि चारों खानि में एक ही जीव है, पर तत्वों

के गुणों के कारण कम-ज्यादा ज्ञान और चेतना है। अस्थावर खानि के जीवों की रचना एक तत्व से हुई है, उष्मज में दो तत्व हैं, अण्डज में तीन तत्व हैं इसलिए इनमें ज्ञान अर्जन की शक्ति नहीं है। पिण्डज खानि में चार तत्व हैं और इसी की मनुष्य योनि में पाँचों तत्व हैं। इसी कारण मनुष्य ज्ञान लेने और अधिक चैतन्य की शक्ति है। यह भक्ति ध्यान के अनुकूल है और भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास करने में सक्षम है।

चार खानि जिव एकै आहीं। तत्व विशेष अहैं सुन ताहीं॥

सो अब तुमसों कहों बखानी। तत्व एक अस्थावर जानी॥

उष्मज दोय तत्व परमाना। अण्डज तीन तत्व गुण जाना॥

पिण्डज चार तत्व गुण कहिये। पाँच तत्व मानुष तन लहिये॥

तासों होय ज्ञान अधिकारी। नर की देह भक्ति अनुसारी॥

शिष्य धर्मदास की जिज्ञासा शान्त करते हुए साहिब कबीर ने मनुष्य देह पाये नर-नारियों में समान ज्ञान नहीं होने का कारण भी समझाया। साहिब ने कहा कि चार खानियों की लाखों योनियों में भटकने के बाद जीव को मनुष्य तन मिलता है। जिस खानि की देह को छोड़कर जीव मानव-तन में आता है, उसी के अनुसार उसमें ज्ञान और गुणों का समावेश हो जाता है। इसीलिए मनुष्य योनि भी चार लाख हैं। काल निरञ्जन ने जीव को अज्ञान में रखने के लिए चार खानियों के भ्रम में डाला है।

धर्मदास परखहुँ चित्त लाई। नर नारि गुन कहूँ समझाई॥

चारि खानि जीव भरमाया। तब ले नर की देही पाया॥

देह धरे छोड़े जस खाना। तैसे का कहूँ ज्ञान बखाना॥

साहिब ने धर्मदास को समझाते हुए भेद बताया कि यह मानव चोला बड़ा ही सुखदाई है; इसी में गुरु का ज्ञान समा सकता है। काल निरञ्जन ने इस मानव देह के कारण ही चौरासी लाख योनि बनाई ताकि जीव मूर्ख रहे, सत्य शब्द को न पकड़ पाये। विभिन्न योनियों में जाने के कारण जीव चेतन नहीं हो पाता है। यदि लगातार मानव देह मिलती रहे तो जीव चेतन

होकर भक्ति में लग जायेंगे और निरञ्जन के संसार का कार्य नहीं चलेगा। इसलिए आत्मा को चार खानि की चौरासी में जीव योनियों में डाला गया, जहाँ ज्ञान नहीं है, जहाँ आत्म साक्षात्कार नहीं हो पाता है। यदि मानव-तन पाकर कोई सच्चे नाम को पकड़ ले तो अमरलोक चला जाता है।

धर्मनि नर देह सुखदायी। नर देही गुरु ज्ञान समायी॥
 नर तनु काज कीन्ह चौरासी। शब्द न गहे मूढ़मति नाशी॥
 चौरासी की चाल न छाड़े। सत्य नाम सो नेह न माडे॥
 लै डारे चौरासी माहीं। परचै ज्ञान जहाँ कछु नाहीं॥
 पुनि पुनि दौड़ काल मुख जाहीं। ताहू ते जिव चेतन नाहीं॥
 यह तन पाये गहे सत्यनामा। नाम प्रताप लहे निजधामा॥



1. सात शून्य सातहि कमल, सात सुरति स्थान।
 इक्कीस ब्रह्माण्ड लग, काल निरंजन ज्ञान॥
2. एक पाट धरती चले, एक चले असमानी।
 काल निरंजन पीसन लगे, सवा लाख की धानी॥
3. अनहद की धुन भँवरगुफा में, अति घनघोर मचाया है।
 बाजे बजे अनेक भांति के, सुनि के मन ललचाया है॥
।
 यह सब काल जाल को फँदा, मन कल्पित ठहराया है॥
4. तहाँ अनहद की घोर शब्द इनकार है।
 लग रहे सिद्ध साधु न पावत पार है॥

बीज के शब्द प्रमात्मा नहीं ?

निरंजन ने जिस बीज रूपी पाँच शब्दों से पांच तत्व के शरीर की रचना की उन शब्दों का स्थान भी शरीर में रख दिया। जिसे काया का नाम कहते हैं। जीव आत्मा को सत्य पुरुष से दूर रखने के लिए काल निरंजन ने जीवों को अपनी भक्ति में लगाने के लिए काया नाम के प्रगट शब्द गुरु मंत्र के रूप में जीवों को दीये जिसमें सभी जीव काया के नाम का सिमरन करने लगे और अन्दर में खोज करने लगे। बड़े-बड़े ऋषी, मुनि, सिद्ध, साधक, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पीर, पैगम्बर, औलिया भी इन शब्दों में उलझ गये। इन पाँच शब्दों को ही प्रमात्मा मान कर इस में ही उलझ गए। निरंजन ने इस भक्ति से जीव को बड़ी-बड़ी शक्तियाँ, रिद्ध, सिद्ध, पावर, चार तरह की मुक्ती का स्वर्ग दे दिया, यहां तक के सभी साधक निरंजन भगवान् की साधना में रम गए और 70 प्रकार की अनहद धुनों में आनन्द मगन रहने लगे और चुप्प रह कर अनहद धुनों का रस लेने के लिए एकांत की तालाश में रहे। मगर आत्मा का ज्ञान न हुआ ऐसे में आत्मा शरीर से अलग ना हो कर अमर लोक अपने निज धाम न जा सकी।

योगमत और संतमत में अंतर

योगमत	संतमत
1. योगमत में काया का नाम है।	1. संतमत में विदेह नाम है।
2. योग मत चाचरी, भूचरी, अगोचरी मुद्राओं के इर्द-गिर्द घूमता है, जो शरीर में हैं।	2. संतमत में पाँच मुद्राओं से आगे शीश से सवा हाथ ऊपर ध्यान रखने को कहा है।
3. यह नाम लिखने-पढ़ने में आता है। इनसे काल-पुरुष ने पाँच तत्व पैदा किये और शरीरों की रचना की।	3. यह अकह नाम है जो लिखने-पढ़ने में नहीं आता है और पाँच तत्वों से बाहर है।
4. योगमत में अनहद धुनों को ही परमात्मा माना जाता है।	4. संतमत में आत्मा किसी शब्द की मोहताज नहीं, क्योंकि आत्मा अपने आप में परिपूर्ण है।
5. योगमत करनी अथवा कमाई का मार्ग है।	5. यह सहज मार्ग है, गुरु कृपा का मार्ग है और भृंग-मता है।
6. योगमत में सुरति शब्द का अभ्यास किया जाता है।	6. संतमत सुरति को चेतन करने का मार्ग है।
7. योगमत में काल का नाम लिया जाता है। यह नाम शरीर को दिया जाता है।	7. संतमत जिंदा नाम प्रदान करता है जो कि शरीर को छोड़ आत्मा को दिया जाता है।
8. योगमत में गुरु की भूमिका न के बराबर होती है।	8. संतमत में भक्ति का सार ही संत सद्गुरु है।
9. योगमत सीमाबद्ध है, जिसमें साधक दसवें द्वार तक ही जाता है।	9. संतमत असीम है जो कि ग्यारहवें द्वार की बात करता है, जो सुरति में है।
10. योगमत निराकार निरंजन की ही सत्ता को सर्वश्रेष्ठ मानता है।	10. संतमत में निराकार सत्ता से आगे चौथे लोक अर्थात् अमर लोक की बात की जाती है।

योगमत	संतमत
11. योगमत में कमाई का फल खत्म होने पर वापिस माता के पेट में आना पड़ता है।	11. संतमत में जीव सदा के लिए आवागमन से मुक्त हो जाता है और अपने निजधाम सत्य लोक को चला जाता है।
12. योगमत बैशाखियों के सहारे चलता है जो कि शास्त्रों की साक्षी देकर अपने आप को स्थापित करता है।	12. संतमत में संत सद्गुरु अपने अनुभव से बोलता है जो किसी का मोहताज नहीं होता है।
13. इसमें रिद्धि-सिद्धि और दिव्य शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, मगर आत्मा का ज्ञान नहीं होता है।	13. संतमत में जीव को आत्मज्ञान होने से आध्यात्मिक शक्तियाँ मिलती हैं।
14. योगमत मीन और पपील मार्ग है।	14. जबकि संतमत विहंगम मार्ग है।
15. योग मत के पाँच पड़ाव हैं जो काल पुरुष के अधीन हैं।	15. सन्तमत सतगुरु की सीधी भक्ति है।
16. निरगुन भक्ति शरीर के अन्दर की भक्ति है जो काल पुरुष के अधीन है।	16. विदेह नाम की भक्ति अमर लोक की परम पुरुष की भक्ति है।

- ❖ पाँच शब्द औ पाँचों मुद्रा, सोई निश्चय माना।
आगे पूरण पुरुष पुरातन, उसकी खबर न जाना॥
- ❖ नौ नाथ चौरासी सिद्ध लों, पाँच शब्द में अटके।
मुद्रा साध रहे घट भीतर, फिर औंधे मुँह लटके॥
- ❖ काया नाम सबहिं गुण गावैं, विदेह नाम कोई बिरला पावै।
विदेह नाम पावेगा सोई, जिसका सद्गुरु साँचा होई॥
- ❖ जब तक गुरु मिले नहीं साँचा, तब तक गुरु करो दस पाँचा॥

मन माया तो एक है

मन और माया एक ही हैं, माया मन में ही समाई हुई है। इसी कारण तीनों लोक में संशय हो गया है, कोई इस गुत्थी को समझ नहीं पा रहा है। साहिब कह रहे हैं किस-किस को समझाऊँ —

मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय।

तीन लोक संस पड़ी, काहै कहूँ समुझाय॥

माया 'मन' से ही उत्पन्न हुई है जिससे सत्गुण-विष्णु जी को, रजगुण-ब्रह्मा को तथा तमगुण-शिव को मिला है। इन तीनों की उत्पत्ति माया (आद्यशक्ति) और मन (काल निरञ्जन) से ही है। वास्तव में पाँच तत्व ही माया है जिससे शरीरों की रचना जीव को बाँधने के लिए ही की गई है। माया मन की मोहिनी शक्ति है, जिससे मनुष्य, मुनि देवता आदि सभी मोहित हो रहे हैं। इस माया से ही मन तीन लोकों में सबको खा लेता है लेकिन माया को कोई नहीं खा सका। कबीर साहिब ने कहा —

माया ते मन ऊपजै, माया तिरगुण रूप।

पाँच तत्व के मेल में, बाँधे सकल सरूप॥

माया मन की मोहिनी, सुर नर रहे लुभाय।

इन माया सब खाइया, माया कोई न खाय॥

मन ब्रह्माण्ड है और पाँच तत्व ही माया है। पाँच तत्व से निर्मित प्रकृति भी माया ही है। इस तरह माया मन में समायी हुई है। पाँच तत्व से निर्मित मनुष्य शरीर भी माया ही है। इस शरीर में आत्मा के साथ मन ही रहता है। मन और माया मिलकर तीन-लोकों में सबको लूट रहे हैं। माया और मन कभी नहीं मरते हैं और न ही मन की आशायें-तृष्णायें कभी मरती हैं। ...मरता तो बार-बार शरीर ही है। धन, स्त्री, पुत्र, घर-बार आदि मोटी माया तो सब छोड़ देते हैं परन्तु अहंकार रूपी सूक्ष्म माया

का त्याग कोई नहीं कर पाता। साहिब ने कहा यही सूक्ष्म माया बड़े-बड़े पीर-पैगम्बर-औलियाओं को खाती आई है।

माया सेती मति मिलो, जो सोवरिया देहि।
नारद से मुनिवर गले, क्या भरौसा तोहि॥
माया मुई न मन मुआ, मरि मरि गया शरीर।
आशा तृष्णा न मुई, यों कथि कहै कबीर॥
मोटी माया सब तजै, झीनी तजी न जाय।
पीर पैगम्बर औलिया, झीनी सबको खाय॥

पाप-पुण्य की बातों में उलझाकर मन सारे संसार को ठगता रहा है इसे कोई भी समझ नहीं पाया। मन ने ही संसार में जीवों को चौरासी के चक्र में डाला हुआ है। इस मन ने **सुर-नर-मुनि-देवता** सबको ठगा है और मन ने ही अवतार धारण किये हैं। मन ही रक्षक बनकर सामने आता है। जो कोई इस मन के धोखे को समझने सद्गुरु की शरण में आ जाता है वही तीन-लोक से न्यारा होकर अमरलोक को जाता है। मन ही दाता बन जाता है, मन ही लालची बन जाता है। मन ही राजा समान हृदय वाला हो जाता है और मन ही कन्जूस हृदय का बन जाता है। यदि यह मन गुरु से मिल जाए तो निश्चय ही गुरु में समा जावेगा।

साहिब ने कहा —

सुर नर मुनि सबको ठगै, मनहिं लिया औतार।
जो कोई याते बचै, तीन लोक से न्यार॥
बात बनाई जग ठग्यो, मन परमोधा नाहिं।
कहे कबीर मन लै गया, लख चौरासी माहिं॥
मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन गुरु सों मिले तो गुरु मिलै निसंक॥

जीवात्मा को सम्बोधित करते हुए कबीर साहिब ने कहा कि हे जीवात्मा! यह मन ही निरञ्जन है, जो तुम्हें युगों-युगों से भ्रमित कर रहा

है। तू तो अमरलोक की हँसात्मा है, लेकिन कालपुरुष मन के वश में आकर तू विवश है।

अलख निरञ्जन, जिसे कोई देख नहीं पाता, संसार के समस्त प्राणियों को बाँधे हुए है। अज्ञानी लोग उसकी झूठी माया को सच मानकर उसके बँधन में स्वयं ही बँध गए हैं। इस प्रकार सारा संसार भ्रम में पड़ा हुआ है, दही के स्थान पर पानी का मंथन किये जा रहा है। जिसतरह चकोर अंगार को ही चन्द्रमा मानकर उसे मुँह में डालता है; उसकी जीभ और चोंच जलती है तो वो उसे उगल देता है, पर दूसरे ही क्षण फिर उसे मुँह में लेता है और अंत में दुःख को प्राप्त होता है। इसी तरह संसारी मनुष्य निरञ्जन को ही अंतिम सत्य मानकर उसी की तरफ जा रहे हैं। सब निरञ्जन मन की ही भक्ति कर रहे हैं और अंत में दारुण दुःख को प्राप्त हो रहे हैं। निरन्तर काल-निरञ्जन की चौरासी की चक्की में पिस रहे हैं।

मन के कहे अनुसार कोई भी कार्य न करो, क्योंकि इस मन का कोई एक-मत नहीं है। कभी यह मन कुछ कहता है, कभी कुछ। सदैव यह मन शरीर के सुखों के उपयुक्त काम करने को ही कहता है। कभी भी यह मन आत्मा के कल्याण के लिये कोई काम करने को नहीं कहता। जो मन की आज्ञा का पालन न करते हुए मन को अपनी आज्ञानुसार चलाता है, ऐसा कोई विरला ही साधु होता है। साहिब की वाणी है —

मन ही सरूपी देव निरञ्जन, तोहि रहा भरमाई ।

हे हँसा तू अमरलोक का पड़ा काल वश आई ॥

अलख निरञ्जन लखे न कोई, जिहि बँधे बँधा सब लेई ।

जेहि झूठे सब बँधु अयाना, झूठी बात साँच कै माना ॥

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक ।

जो मन पर असवार है, ऐसा साधु कोई एक ॥

यह शरीर पाँच-तत्त्व, पच्चीस प्रकृति और तीन गुणों का पिंजड़ा है, जिसमें निर्मल-अनश्वर आत्मा को काल-निरञ्जन ने कैद करके रखा है।

मन ही सरूपी देव निरञ्जन, तोहि रहा भरमाई ।

पाँच पच्चीस तीन का पिंजड़ा, जामें तोहि राखा भरमाई ॥

क्या हम सब किसी शैतानी ताकत के हाथ में हैं? सुनने में तो यह आता है कि ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता, सब उसकी हुकुमत के अन्दर है। फिर ऐसा क्यों लगता है एक शैतानी ताकत हमें नचा रही है। संतों ने भी बहुत पहले चेताया कि — **सय्याद के काबू में है, सब जीव विचारें**। संतों की वाणियों से एक बात इंगित हो रही है कि यह ब्रह्माण्ड शैतानी ताकत के हाथ में है।

यह संसार काल को देशा, बिना नाम न कटे कलेशा ।

यह बात महज कल्पना नहीं है। इसमें वजन है। भाईयों, यह कैसी विडम्बना है! क्या हम सब परमात्मा के राज्य में नहीं हैं! क्या हमारा संचालन परमात्मा नहीं कर रहा है!

संतों ने क्राँति उत्पन्न कर दी यह कह कर कि —

ऋषि मुनि गण गन्धर्व अरू देवा । सब मिल लाग निरञ्जन सेवा ॥

मानो पग-पग पर हमें सतर्क कर रहे हैं —

तीन लोक में यम का राज । चौथे लोक नाम निर्वाण ॥

चल हँसा सत्लोक, छोड़ यह संसारा ।

यह संसार काल का देशा, कर्म का जाल पसारा ॥

देखते हैं क्या पूरी कायनात कालपुरुष के हाथ में है। अगर थोड़ा विचार करें तो समझ आता है कि जीवात्मा का संचालन ठीक हाथों में नहीं है। जब चोरियाँ अधिक होने लगती हैं, अपराध बढ़ने लगते हैं तो हम कहते हैं सरकार ठीक नहीं है, पुलिस को भी दोष देते हैं। फिर क्यों न विचार करें कि ब्रह्माण्ड में जो काम हो रहे हैं, क्या वो ठीक हैं? अगर चिन्तन करें तो आत्म-निष्ठ मानव नज़र नहीं आ रहा है। कोई चोरी कर रहा है, चरित्रहीनता के कार्य कर रहा है, छल-कपट हो रहा है। कहीं भी आत्मा के गुणानुकूल, ईश्वरीय गुण कर्म मनुष्यों में दिखाई नहीं दे रहा है।

इसके अतिरिक्त कहीं समुद्री तूफान, कहीं भूकम्प, कहीं आग कहीं बाढ़ से विनाश होते हैं। हवाई जहाज, रेलगाड़ी, बस आदि दुर्घटनाग्रस्त होकर निर्दोष लोग मर जाते हैं। क्या यह ईश्वरीय गुण कर्म हैं। वो सत्ता ऐसे दुःख-कष्टों में क्यों ढकेलती है। ईश्वरीय गुण-धर्म तो केवल कल्याणकारी है और वे ही आत्मा के गुण हैं। इन्सान और सब जीव अपने बच्चों की बेहतरी और सुख के लिए हर काम करते हैं। क्या परमात्मा अपने अंश जीव के लिए कुछ नहीं सोचता। **पक्का लग रहा है दुनिया के लोग किसी क्रूर सत्ता के हाथ में हैं**, इसलिए सब तरफ दुःखों का ही आधिक्य है। छल-कपट-स्वार्थ से भरे लोग ही सुखी दिखाई देते हैं उन्हीं के पास धन-धान्य-लक्ष्मी है।

कौन है वो शैतानी ताकत! वो है 'मन'। मन ही निरञ्जन काल है, निराकार है, उसी की हुकुमत चल रही हैं। काम, क्रोध, सब में एक जैसे हैं। भूख-प्यास सभी को लग रही है, आलस्य सभी में है। आत्मा की कोई वृत्ति नहीं दिख रही है मन में निर्मलता, सहजता, अमलता, आनन्द नहीं है जो अमर आत्मा के गुण हैं। जब आकाश में उड़ने वाला पंछी पिंजरे में कैद हो जाता है तो चाहे कितना भी बढ़िया भोजन मिल जाये, उसका आनन्द लुट जाता है। इसी तरह आत्मा यहाँ कैद है। सभी यहाँ कैद में हैं, और कैद करने वाली ताकत है - **मन**।

मन मनुष्य का बहुत बड़ा शत्रु है। हमारे शरीर में आत्मा का जोर नहीं चल रहा, हुकूमत ही मन की चल रही है। इसी कारण सदा असंतोष है, इच्छा और संकल्प है, वैमनस्यता और झगड़े हैं। साधारण आदमी ही नहीं, बड़े-बड़े तपस्वी, सन्यासी आदि भी इस मन से छूट नहीं पाये। सभी मन के काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार में उलझ कर रह गये। प्रमाण मिलते हैं कि भृगुऋषि, परशुराम और दुर्वासा ऋषि ने तप किया, और क्रोध के वशीभूत हो गये। श्रृंगी ऋषि आदि भी काम के वश में हो गये।

हम एक बात कहते हैं कि आत्मा की मुक्ति करनी है। जरूर इसे कोई कैद किये है, तभी तो हम मुक्ति की बात कहते हैं। मन जीव को नचा रहा है, इसे कोई देख नहीं पा रहा है। हरेक मन की डोरी से नाच रहा है, आत्मदेव कुछ भी नहीं करने वाला है। आत्मा तो परेशान है, उसको कोई अता-पता नहीं मिल रहा है, वो तो मन के लिए कर्म और कर्मफल से बँधी है। आत्मा तो कर्म संचय और कर्मफल अनुसार किसी ने किसी शरीर में बँधकर उसे ही अपना घर मान बैठी है। सुख-दुःख, सोना-जागना भी मन के गुण हैं, पर मनुष्य इन्हीं के लिये जिए जा रहा है। शरीर की जरूरतों को पूरा करने के लिए मनुष्य कर्म कर रहा है। कोई खेती-बाड़ी कर रहा है, कोई उद्योग-धंधा कर रहा है, अच्छा मकान-भवन बना रहा है। ये सब पेट के लिये और सर्दी-गर्मी से बचने के लिए हैं। कोई आत्मा के लिए कुछ नहीं कर रहा है, यह आत्म अनुभूति के लिए नहीं है। हो सकता है मेरी ये बातें आपको पागल कर देने वाली लगे, पर सच हैं।

संतों यह जग बोरा ना।

साँच कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना॥

केहि समुझावों यह जग अंधा।

सबै लगौ है पेट के धंधा॥

मन सब पर असवार है। मन की इच्छानुसार ही संसार के सभी प्राणी कर्म कर रहे हैं। संतों की इस बात को संसार के लोग समझ नहीं पाते हैं और उल्टे शत्रु बन जाते हैं। कबीर साहिब ने कहा कि मुझे ऐसा कोई नहीं मिलता, जिससे मैं अपना दुःख कह सकूँ। जिससे भी अपने दुःख के पीछे छिपे रहस्य को बताने का प्रयास करता हूँ, वो ही मेरा बैरी हो जाता है।

ऐसा कोई न मिलै, जासो कहूँ दुख रोय।

जासों कहिये भेद की, वो फिर बैरी होय॥

कालपुरुष द्वारा बार-बार चौरासी की चक्की में पिस रहे जीवों की हालत देखकर संत दुःखी होते हैं। दुनिया इस रहस्य को समझ नहीं पाती, इसलिए वो संतों की बैरी हो जाती है। साहिब ने बहुत प्यार भरे शब्द कहे —

काल का जीव माने नहीं, मैं कोटिन करों उपाय।

मैं खींचत हूँ सत्लोक, को वो बाँधा यमपुर जाये।।

कुँए के मेंढक की तरह यह जीव काल की सीमा से बाहर ही नहीं निकलना चाहता है। एक कथा है कि कोई व्यक्ति कहीं जा रहा था। उस राहगीर को प्यास लगी और उसे रास्ते में एक कुँआ दिखा तो अपनी रस्सी-बाल्टी से पानी निकालने पहुँचा। उस कुँए में यात्री ने एक मेंढक देखा तो सोचा यह यहाँ से निकल ही नहीं सकता है। उसने बाल्टी के सहारे से मेंढक को निकालने का प्रयास किया। बड़े प्रयास के बाद बाल्टी में मेंढक बाहर आया। उसने पहले उस आदमी को देखा, बाहर मैदान-वृक्ष भी देखे और फिर कुँए में छलाँग लगा दी। उस व्यक्ति ने सोचा मैंने इतनी मेहनत से इसे बाहर निकाला, यह इसने क्या किया।

इसी तरह मन-माया रूपी कुँए से जीव को बाहर निकालने का प्रयास संत किया करते हैं, पर जीव उसी में आनन्द ढूँढ रहा है। माया रूपी कुँए में आनन्द क्यों ढूँढ रहा है यह सोचने वाली बात है। वास्तव में जीवात्मा में है ही आनन्द, इसलिए बस आनन्द की ही तलाश में है। अज्ञानतावश जीव शरीर में अपनी आत्मा के भीतर के आनन्द को बाहर की वस्तुओं में खोज रहा है। जीवन भर मनुष्य आनन्द पाने के लिए काम करता है, भटकता है और अज्ञानतावश कस्तूरी के मृग की भाँति बाहर भटक रहा है। मन हरेक आदमी को शरीर और इन्द्रियों के सुख के लिए जीने को प्रेरित कर रहा है। इसी शरीर सुख के लिए मनुष्य पाप भी कर रहा है। आत्मा को ऐसे सुख की जरूरत नहीं है। हम सब इस नश्वर शरीर के लिए जिये जा रहे हैं। 'आखिर यह तन खाक मिलेगा, कहाँ फिरत मगरूरी में'।

एक बार अकबर ने बीरबल से पूछा कि संसार में सबसे प्यारी चीज क्या है ? बीरबल ने कहा — ‘अपनी जान’। अकबर ने असहमत होकर कहा — नहीं ! अपनी संतान है। बीरबल ने सोचा इन्हें समझाते हैं। उसके समझाने का तरीका बड़ा सूझबूझ भरा प्यारा होता था। पूछा — महाराज ! कौन अपनी संतान से सबसे ज्यादा प्यार करता है। अकबर ने कहा — बंदरिया अपनी संतान को सबसे अधिक प्यार करती है। सच ही है, बंदरिया बड़ा प्यार करती है, अपनी संतान से। अब देखते हैं कितना ! ... एक दिन बीरबल ने धूप में चार दीवारी बनवाकर उसमें रेत बिछवा दी। खूब गर्मी थी, रेत गर्म हो चुकी थी। एक बन्दरिया को उसके बच्चे के साथ उसमें छोड़ दिया। बन्दरिया बच्चे को लेकर दौड़ती रही, बाहर निकलने का रास्ता खोजती रही। वह बच्चे को रेत से छूने भी नहीं दे रही थी। अंत में जब उससे सहा नहीं गया तो बच्चे को जो साथ में चिपका रखा था, नीचे उतारकर गर्म रेत पर रखा और खुद उसके ऊपर बैठ गई। बादशाह अकबर हैरान रह गया।

इसी तरह कोई भी साथ नहीं जाने वाला काल-निरञ्जन की इस दुनिया में आपके अंतिम समय। कबीर साहिब ने दुनिया की यही रीति और सम्बन्ध को समझाया—

मन फूला फूला फिरे जगत में, कैसा नाता रे।
 माता कहे यह पुत्र है मेरा, बहिन कहे बीर मेरा रे।
 भाई कहे यह भुजा हमारी, नारी कहे नर मेरा रे।
 पेट पकड़कर माता रोवे, बाँह पकड़कर भाई रे।
 लिपटि झपटि के तिरिया रोवे हँस अकेला जाई रे।
 जब तक जीवे माता रोवे, बहिन रोवे दस मासा रे।
 तेरह दिन तक तिरिया रोवे, फेर करे घर बासा रे।
 चार गज़ी चरगाजी मंगाई, चढ़ा काठ की घोड़ी रे।
 चारों कोने आग लगाई, फूँक दियो जस होरी रे।

हाड़ जले जस लाकड़ी, केश जरे जस घासा रे।
 सोने की सी काया जरि गई, कोई न आये पासा रे।
 कहै कबीर सुनो भाई साधौ, छोड़ो जग की आसा रे॥

हम सब मन रूपी बैरी को समझ ही नहीं पा रहे हैं। हरेक कर्म का कर्ता मन है, वो ही निरञ्जन है। इसी को भगवान भी कहा है। संतों ने इसी को कालपुरुष कहा है। तीन लोकों में इसी मन का राज है। मन ही हमें बाँधने वाला है। मन ही कहता है बेटे को डाक्टर या इंजीनियर बनाना है; वही कहता है कि पैसा कमाना है। मन ही कहता है घर में और दो कमरे बनाना है। ऐसा क्यों! क्योंकि मन ही आपके जीवन का बहुमूल्य समय नष्ट कर रहा है। फिर आगे मन ही कर्म संचय के आधार बनाकर चौरासी की खानि में आत्मा को डाल रहा है। मानव चोला ज्ञान का मुक्ति का द्वार है, इसीलिए मन लगातार मानव-तन से गिराता है। मन कभी भी सत्यभक्ति की ओर नहीं जाने देगा, इसी कारण कोई ठीक से भक्ति नहीं कर रहा है।

वेद से मिला रहस्य, ब्रह्मा के साथ गायत्री तथा पुहपावती की रतिक्रिया और श्रीविष्णु तथा शिव को वरदान के **माया-जाल** का भेद कबीर साहिब ने भक्त धर्मदास जी को बताया। इसी कारण त्रिलोकों के अवतारों की भक्ति में **मन-माया** समाई है क्योंकि त्रिदेवों को समुद्र-मंथन से काल-निरञ्जन और आद्यशक्ति ने जगत के संचालन की वस्तुएँ ही दी हैं।

वेद से ब्रह्मा को मिला रहस्य: आद्यशक्ति ने छिपाया

समुद्र मंथन से ब्रह्मा को मिले वेद को पढ़कर उन्होंने जाना कि एक 'पुरुष' है। वह पुरुष निराकार है जिसका कोई रूप नहीं है। शून्य में (आकाश से ऊपर) ज्योत स्वरूप दिखता है अर्थात् काल-निरञ्जन का शीश स्वर्ग में और पैर पाताल में समाये हैं। चित्त में देखने पर कहीं निरञ्जन की देह नहीं दिखेगी। यह जानकर ब्रह्मा ज्ञान से मतवाले हो गए। ज्ञान से चतुर्मुख हुए ब्रह्मा ने भ्राता विष्णु को कहा कि वेद ने मुझे एक

‘आदि पुरुष’ होना बताया है। शिव से भी ब्रह्माजी ने कहा कि वेद के मंथन से एक पुरुष होने का पता चलता है। वेद ने एक पुरुष होना तो कहा; किन्तु वेद कहता है वह भी इसका भेद नहीं पाया। तब ब्रह्मा माता आद्यशक्ति के पास आए और चरणों पर माथा टेका। फिर कहा हे माता! वेद से मुझे ज्ञात हुआ कि सृष्टि का सृजन करने वाला कोई ओर है। हे जननी! तुम्हारा पति कहाँ है, कृपा करके बताओ हमारे पिता कहाँ हैं? तुम चित्त पर जोर देकर ध्यान करो। वेद से यह रहस्य प्रकट हुआ है कि एक पुरुष है जो गुप्त है।

ब्रह्मा वेद पढ़न तब लागा। पढ़त वेद तब भा अनुरागा॥
 कहे वेद पुरुष इक आही। है निरंकार रूप नहिं ताही॥
 शून्य माहिं वहि जोत दिखावे। चितवन देह दृष्टि नहिं आवे॥
 स्वर्ग सीस पग आहि पताला। तेहिमत ब्रह्मा भौ मतवाला॥
 चतुरानन कहें विष्णु बुझावा। आदिपुरुष मोहिं वेद लखावा॥
 पुनि ब्रह्मा शिवसों अस कहई। वेद मंथन पुरुष इक अहई॥
 अहै पुरुष इक वेद बतावा। वेद कहे हम भेद न पावा॥
 तब ब्रह्मा माता पहुँ आवा। करि प्रणाम तब टेके पाँवा॥
 हे माता मोहि वेद लखावा। सिरजन हार ओर बतलावा॥
 ब्रह्मा कहे जननी सुनौ, कहहु कन्त तुम्हार है।
 कीजै कृपा जनि मोहि दुरावो, कहाँ पिता हमार है।

जननी आद्यशक्ति ने कहा — हे ब्रह्मा सुनो तुम्हारा पिता कोई नहीं है, सब उत्पत्ति मुझ से हुई है और मैं ही सबकी पालक हूँ। ब्रह्मा ने कहा — हे माता! ध्यान से सुनो, वाणी में आ रहा है कि एक पुरुष है, जो गुप्त है।

कहे जननी सुनहु ब्रह्मा, कोउ नहिं जनक तुम्हार हो॥
 हमहि ते भई सब उत्पत्ति, हमहि सब कीन सम्हार हो॥
 ब्रह्मा कहे पुकार, सुनु जननी तैं चित्त दे॥
 कहत वेद निरुवार, पुरुष एक सो गुप्त है॥

माता ने कहा — हे ब्रह्मा मुझसे अलग श्रृष्टि में कोई नहीं है, मैं ही श्रृष्टा हूँ, मैंने ही स्वर्ग, पाताल, मृत्यु आदि लोक बनाये हैं। मैंने ही सात समुद्रों का निर्माण किया है।

कहे आद्या सुनु ब्रह्म कुमारा। मोसे नहीं कोउ सृष्टा न्यारा ॥

स्वर्ग मृत्यु पाताल बनाई। सात समुन्दर हम निरमाई ॥

तब ब्रह्मा ने पूछा — कि माना तुम्हीं ने सब कुछ रचना की, पर यदि ऐसा था तो पहले हमसे क्यों नहीं कहा, छिपाये क्यों रखा। वेद ने जब मुझे बताया कि एक पुरुष हैं, निरञ्जन है निराकार है तब तुम कह रही हो तुम्ही करतार हो। सब कुछ तुमने ही रचा है तो वेद के शब्द भी तुम्हारे ही हैं; फिर तुमने वेद में अलख निरञ्जन की बात कैसे कही। तुमने वेद में भी स्वयं को ही रचनाकर्ता क्यों नहीं कहा। अब तुम मुझ से छल मत करो और सच-सच सब बता दो।

मानो वचन तुमहि सब कीन्हा। प्रथम गुप्त तुम कस रख लीन्हा ॥

जबै वेद मोहि कहै बुझाई। अलख निरञ्जन पुरुष बताई ॥

अब तुम आप बने करतारा। प्रथम काहे न किया विचारा ॥

जो तुम वेद आप कथि राखा। तो कस तुम अलख निरञ्जन भाखा ॥

आपे आप आप निरमाई। काहे न कथन कीन तुम माई ॥

अब मोसन तुम छल जनिकरहु। सांचे सांच सब कहि उच्चरहु ॥

जब ब्रह्मा ने विधाता के बारे में यह जिद्द की तो शक्ति ने मन में विचार किया कि ये तो मुझे सृष्टा मान ही नहीं रहा, इसे कैसे समझाऊँ। यदि इसे निरञ्जन के बारे में कहूँ तो यह कैसे समझेगा, क्योंकि निरञ्जन ने तो कहा था कि उसे कोई देख नहीं पाएगा। यदि ब्रह्मा कहेगा कि दिखाओ तो उस अलख को कैसे दिखाऊँगी। अतएव विचार करके शक्ति ने कहा कि अलख निरञ्जन का किसी को दर्शन नहीं होगा।

जब ब्रह्मा यहि विधि हठ ठाना। तब अद्या मन कीन्ह तिवाना ॥

केहि विधि यहि कहूँ समझाई। विधि नहिं मानत मोर बड़ाई ॥

जो यहि कहौं निरञ्जन बाता । कैहि विधि समझे यह विख्याता ॥
 प्रथम कह्यो निरञ्जन राई । मोर दरश काहू नहिं पाई ॥
 अबै जो यहि अलख लखावो । कौनी विधि ताको दिखलावो ॥
 अब विचार पुनि ब्रह्मै समझावा । अलख निरञ्जन नहिं दरस दिखावा ॥

ब्रह्मा सन्तुष्ट नहीं हुए कहने लगे कि मुझे उनका ठिकाना बताओ कि वो कहाँ हैं । तुम मुझे बातों में मत बहलाओ, अब मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगा । पहले तुमने मुझे भुलावा दिया कि कोई नहीं है, फिर कहती हो कि दिखाई नहीं देगा । मुझे तुम्हारी बात नहीं सुहाती है, यह कैसी अजब बात है कि पुत्र को पिता का दरश नहीं होगा ।

ब्रह्मा कहे मोहिं ठौर बतावो । आगा पीछा जनि तुम लावो ॥
 मैं नहिं मानों तुम्हरी बाता । ऐसी बात न मोहि सुहाता ॥
 प्रथम तुम मोहि दीन भुलावा । अब तुम कहो न दरस दिखावा ॥
 तासु दरस न पैहो पूता । ऐसी बात कहो अजगूता ॥

आद्य शक्ति ने कहा, हे ब्रह्मा ! सुनो मैं तुमसे सत्य कहती हूँ कि सात स्वर्ग तक अलख निरञ्जन का शीश है और सातवें पाताल तक उनके चरण हैं । फिर माता ने फूल देते हुए कहा कि यदि तुम्हें पिता के दर्शन की इच्छा है तो यह फूल लो; जाकर माथा टेकना और फूल चढ़ाना । तब ब्रह्मा फूल लेकर आकाश में पिता की खोज में जाने लगे ।

कहे जननी सुनो ब्रह्मा, कहों तोसों सत्त ही ।
 सात स्वर्ग है माथ ताको, चरण पाताल सप्त ही ॥
 लेहु पुष्प तुम हाथ, जो इच्छा तिहि दरश की ।
 जाये नवाओ माथ, ब्रह्मा चलै शिर नाइकै ॥

शक्ति ने चित्त में विचार किया कि ब्रह्मा मेरी बात नहीं मान रहा है क्योंकि वेद ने इसे उपदेश दिया है, पर यह दरश नहीं पावेगा । तब अष्टांगी ने कहा कि अलख निरञ्जन तुम्हारे पिता हैं, पर तुम उनका दरश नहीं पा सकोगे, मेरा यह वचन मान लो । यह सुन ब्रह्मा ने व्याकुल होकर

माता के चरणों में शीश झुकाया और यह कहते हुए कि पिता के दर्शन करके ही तुम्हारे पास आऊँगा। फिर तुरन्त ब्रह्मा उत्तर दिशा की तरफ तेजी से चले गए।

जननी गुन्यो वचन चित्त माहीं। मोरी कही यह मानत नाहीं॥
या कहूँ वेद दीन्ह उपदेसा। पै दरस तै नहिं पावे भेषा॥
कह अष्टंगी सुनो रे बारा। अलख निरञ्जन पिता तुम्हारा॥
तासु दरस नहिं पैहो पूता। यह मैं वचन कहाँ निज गूता॥
ब्रह्मा सुनि व्याकुल है धावा। परसन सीस ध्यान हिय लावा॥
ब्रह्मा चले जननी सिर नाई। सीर परसि आवों तोहि ठाई॥
तुरतहि ब्रह्मा दीन्ह रिंगाई। उत्तर दिशा बेगि चलि जाई॥

विष्णु जी भी माता से आज्ञा लेकर पिता के दर्शन को पाताल चले गए। पर शिवजी कहीं नहीं गए; वे माता की सेवा में ही लगे रहे। इस तरह बहुत दिन बीत गए; माता ने सोचा कि पुत्रों ने यह क्या किया।

आज्ञा माँगि विष्णु चले बाला। पिता दरश को चले पताला॥
इत उत चितय महेस न डोला। सेवा करत कछू नहिं बोला॥
तेहि शिव मन अस चिंत अभावा। सेवा करन जननि चित लावा॥
यहिविधि बहुत दिवस चलि गयऊ। माता सोच पुत्र कस कियऊ॥

पहले विष्णु जी लौटकर माता के पास आए और पाताल जाने की कथा समझाते हुए कहा कि मैं पिता के चरण नहीं पा सका।

प्रथम विष्णु जननी ढिग आये। अपनी कथा कहि समझाये॥
भेद्यों नहिं मोहि पगु ताता। विष ज्वाला स्यामल भौगाता॥

विष्णु की बात सुनकर शक्ति ने प्रसन्न हो उसे आशीर्वाद दिया और उसका मुख चूमा, उसे प्यार किया, कहा — कि तुमने सत्य बोला है। फिर माता ने विष्णु से पूछा — हे पुत्र! जब तुम पिता के चरण देखने गए थे तब गौर वर्ण थे, मुझे सत्य बताओ कि किस कारण तुम्हारा शरीर श्याम वर्ण हो गया।

सुनि हर्षित भई आदि कुमारी । लीन्ह विष्णु कहँ निकट दुलारी ॥
 चूमेउ बदन सीस दियो हाथा । सत्य सत्य बोलेउ सुत बाता ॥
 पुनि कह माता विष्णु दुलारा । सुनहु पुत्र इक वचन हमारा ॥
 सत्य सत्य तुम कहो बुझाई । पितु पद परसन जब गै भाई ॥
 प्रथमहु तो तुम गौर शरीरा । कारण कौन श्याम भये धीरा ॥

विष्णु ने माता को बताया कि तुम्हारी आज्ञा पाकर और फूल लेकर जब मैं पाताल लोक जा रहा था तो रास्ते में शेषनाग मिले। शेष के विष के प्रभाव से मैं अचेत हो गया और मेरा वर्ण श्याम हो गया; तब शेष नाग ने कहा कि हे विष्णु! माता के पास वापिस लौट जाओ और सत्य कहना। शेष ने कहा है कि सत्ययुग और त्रेतायुग बीत जाने पर द्वापर युग आएगा, तब तुम्हारा (विष्णु) कृष्ण अवतार होगा तब तुम मुझ से बदला लोगे। कालिंदी नदी में जाकर तुम नाग को नथोगे। अभी तुम तुरन्त चले जाओ कुछ भी विलंब नहीं करना। हे माता! ऐसे मैं तुम्हारे पास वापस आ गया और विष की ज्वाला से मेरा शरीर साँवला हो गया है। मुझे पिता के चरणों के दर्शन नहीं हो सके।

आज्ञा पाय हम तत्काला । पितु पद परसन चले पताला ॥
 अक्षत पुहुप लीन्ह कर माहाँ । चले पताल पंथ मग जाहाँ ॥
 पहुँचि शेषनाग पहुँ गयऊ । विष के तेज हम अलसयऊ ॥
 भयो श्याम विष तेज समावा । भई आवाज अस वचन सुनावा ॥
 अहो विष्णु माता पहुँ जायी । बचन सत्य कहियो समझाई ॥
 सत्ययुग त्रेता जैहैं जबही । द्वापर ह्वै चौथा पद तब ही ॥
 तब तुम हौहु कृष्ण अवतारा । लैहो ओयल सो कही विचारा ॥
 नाथहु नाग कलिंदी जाई । अब तुम जाहु विलंब न लाई ॥
 पहुँचे हम तब ही तुव पासा । कीन्हेउ सत्य वचन परकासा ॥
 भेटेउ नाहिं माहि पद ताता । विष ज्वाला साँवले भो गाता ॥
 व्याकुल भयो तबै फिर आयो । पितु पद दर्शन मैं नहिं पायो ॥

उधर शून्य में ध्यान मग्न ब्रह्मा को कई युग बीत गए पर पिता (निरञ्जन) के दर्शन नहीं हो सके। इधर आद्यशक्ति को चिंता हुई कि बड़ा बेटा कहाँ रह गया; सृष्टि को कैसे रचा जाये, किस उपाय से ब्रह्मा को बुलाया जाये।

ब्रह्मा तात दरश नहीं पाया। शून्य ध्यान महँ बहु जाया ॥

माता चिन्ता करत मन माहाँ। जेठ पुत्र ब्रह्मा रहु काहाँ ॥

किहि विधि रचना रचहु बनाई। ब्रह्मा आवै कौन उपाई ॥

तब शक्ति ने अपने शरीर को रगड़ कर उसके मेल से एक कन्या को रचा और उसमें अपनी शक्ति दी। उस कन्या का नाम 'गायत्री' रख दिया। गायत्री ने माता के चरणों शीश नवाकर चरणों को चूमा और हाथ जोड़कर विनती की, हे जननी! किस कार्य के लिए मुझे बनाया है, आपकी आज्ञा मैं अपने शीश पर लूँगी।

उबटि शरीर मैल गहि काढ़ी। पुत्री रूप कीन्ह रचि ठाढ़ी ॥

शक्ति अंश निज ताहि मिलावा। नाम गायत्री ताहि धरावा ॥

गायत्री मातहि सिर नावा। चरन चूम निज सीस चढ़ावा ॥

गायत्री विनवै कर जोरी। सुनु जननी इक विनती मोरी ॥

कौन काज मोकहँ निरमाई। कहो वचन लेऊँ सीस चढ़ाई ॥

आद्यशक्ति ने कहा — हे पुत्री! तुम्हारा बड़ा भाई ब्रह्मा पिता का दर्शन करने आकाश को गया है; वो पिता का दर्शन नहीं पा सकेगा और खोजते-खोजते जन्म गवाँ रहा है। इसलिए तुम जाओ और ऐसा उपाय करो जिससे वो यहाँ वापिस आ जाए।

कहे अद्या पुत्री सुनु बाता। ब्रह्मा आहि जेठहि तुब भ्राता ॥

पिता दरश कहँ गयो आकाशा। आनौ ताहि वचन परगासा ॥

दरश तात कर वह नहिं पावे। खोजत खोजत जनम गमावे ॥

जौने विधि ते इहँवा आई। करो जाय तुम तौन उपाई ॥

माता के वचन प्रेमपूर्वक सुनकर गायत्री, खोजने चल पड़ी। वह

सुकुमारी मार्ग में चलते हुए माता के वचन हृदय में रखे रही।

चलि गायत्री मारग आई। जननी वचन प्रीति चित लाई ॥

चलत भई मारग सुकुमारी। जननी वचन ध्यान उर धारी ॥

गायत्री ने जाकर देखा कि ब्रह्मा ध्यान मग्न है, आँखें बंद किये हुए हैं, पलक भी नहीं उठाते। गायत्री ने कुछ दिन तो वहीं प्रतीक्षा की फिर युक्ति पर विचार किया कि कैसे जगाऊँ। यह किस प्रकार से जागेंगे क्या उपाय किया जाये। मन में इसप्रकार बहुत सोचने के बाद, माता का ध्यान किया। आद्यशक्ति ने गायत्री को ध्यान में पाया तो उसे युक्ति बताई कि अपने हाथों से ब्रह्मा के चरण छुओ तबही वह जागेगा। तब गायत्री ने वैसा ही किया जैसी माता ने युक्ति बताई। गायत्री ने एक चित्त होकर उसके चरणों को स्पर्श किया।

जाय देख्यो चतुरमुख कहँ, नाहिं पलक उधारई।

कछुक दिन सो रही तहँवा, बहुरि युक्ति विचारई ॥

कौन विधि यह जागि है, अब करौ कौन उपाय हो।

मन गुनन सोचे बहुत विधि, ध्यान जननी लाय हो ॥

अद्या आयसु पाय, गायत्री तब ध्यान महँ ॥

निज कर परसहु, ब्रह्मा तबही जागिहैं ॥

गायत्री पुनि कीन्ही तैसी। माता युक्ति बताई जैसी ॥

गायत्री तब चित्त लगाई। चरण कमल कहँ परसेउ जायी ॥

ब्रह्मा का ध्यान भंग हो गया वह जाग गए। बहुत बेचैन होकर बोले कि किस पापी ने यह अपराध किया और मुझे समाधि से विचलित कर दिया। मैं पिता के ध्यान में था जिसे खण्डित कर दिया, उस अपराधी को जानकर मैं श्राप दूँगा।

ब्रह्मा जाग ध्यान मन डोला। व्याकुल भयो बचन तब बोला ॥

कवन अहै पापिन अपराधी। कहा छुड़ायहु मोरि समाधि ॥

शाप देहुँ तोकहँ मैं जानी। पिता ध्यान मोहि खंड्यो आनी ॥

गायत्री ने तुरन्त ही जताया कि मेरा कोई पाप नहीं है पहले जान लो फिर श्राप देना। मैं तुमसे सत्य कहती हूँ, तुम्हें लेने तुम्हारी माता ने मुझे भेजा है। तुम शीघ्र ही चलो तुम्हारे बिना रचना का विस्तार कैसे होगा। तुम पिता का दर्शन नहीं पा सकोगे। अतः तुरन्त चलो नहीं तो बहुत पछताओगे।

कहि गायत्री मोहि न पापा। बूझि लेहु तब देहहु शापा॥
 कहां तोहि सो साँची बाता। तोहि लेन पठयी तुव माता॥
 चलहु वेगि जनि लावहु वारे। तुम बिन रचना को विस्तारे॥
 गायत्री कह दरस न पैहो। बेगि चलहु नहिं तो पछतैहो॥

ब्रह्मा बोले कि कैसे जाऊँ मैंने अब तक पिता को नहीं देखा। यदि तुम मेरी ओर से यह गवाही दो कि मुझे पिता के शीश का दर्शन करते स्वयं देखा है तो तुम्हारे साथ मैं चलूँगा। यह तुम्हें माता को समझाना होगा।

ब्रह्मा कहे कौन विधि जाऊँ। पिता दरस अजहूँ नहिं पाऊँ॥
 ब्रह्मा कहै देहु तुम साखी। परस्यो सीस देख मैं आँखी॥
 ऐसे कहो मातु समझाई। तो तुम्हरे संग हम चलि जायी॥

तब गायत्री ने कहा हे वेदज्ञाता! मैं झूठ वचन नहीं बोलती; हाँ यदि तुम मेरा स्वार्थ पूरा करो तो मैं झूठ बनाकर कह दूँगी। ब्रह्मा ने पूछा तुम क्या चाहती हो स्पष्ट कहो पहेली मत बुझाओ। तब गायत्री ने कहा तुम मुझे रतिक्रिया दो तो मैं तुम्हारे लिए झूठ बोलूँगी।

कह गायत्री सुन श्रुत धारी। हम नहिं मिथ्या वचन उचारी॥
 जो मम स्वारथ पुरवहु भाई। तो हम मिथ्या कहब बनायी॥
 कह ब्रह्मा नहिं लखी कहानी। कहौ बुझाये प्रगट की बानी॥
 कह गायत्री देहु रति मोहि। तो कह झूठ जिताऊँ तोहि॥

यह सुनकर ब्रह्मा ने सोचा कि अब क्या यत्न करूँ, यदि इसकी बात नहीं मानूँगा तो माता के सामने मेरी बात नहीं बनेगी। यह गवाही नहीं

देगी तो माता मुझे लजावेगी कि पिता को पाने गया और एक यह कार्य भी पूरा नहीं हुआ। पाप सोचकर कार्य सिद्ध नहीं होगा इसलिए गायत्री की मर्जी के अनुसार रतिक्रिया ही करूँ। ऐसे गायत्री को रतिक्रिया का दान दे कर ब्रह्मा ने पिता के दर्शन की बात भुला दी।

यह सुन ब्रह्मा चित करे विचारा। अब का यत्न करहूँ इहि बारा ॥

जो विमुख या कह करों, अब तो नहिं बन आवई।

साखि तो यह देय नाहिं, जननी मोहि लजावई।

यहाँ नाहिं पिता पायो, भयो न एको काज हो।

पाप सोचत नहिं बनै, अब करौं रति विधि साज हो ॥

कियो भोग रति रंग, विसरयो सो मन दरश का ॥

दोनों की उमंग बढ़ती गई जिससे छलमति की बुद्धि उत्पन्न हुई। ब्रह्मा ने कहा चलो अब माता के पास चलें तो गायत्री समझाते हुए बोली एक युक्ति और करते हैं; दूसरी साक्षी भी बना लेवें। ब्रह्मा ने कहा अच्छी बात है तुम वही करो जिससे माता विश्वास कर लेवे। तब गायत्री ने विचार किया और अपनी ही देह से मैल निकाल कर एक कन्या रची उसे अपना अंश दिया। उस कन्या का नाम सावित्री रख दिया। गायत्री ने उसे समझाया कि तुम माता से कहना कि ब्रह्मा ने पिता का दर्शन पाया है। सावित्री ने कहा कि झूठी गवाही देने से अपनी ही हानि होगी, मैंने तो कुछ भी देखा ही नहीं है। यह सुनकर ब्रह्मा और गायत्री चिंता में पड़ गये कि यह तो और कठिन संताप बन गई। गायत्री ने अनेक प्रकार से फिर समझाया परन्तु सावित्री के मन में बात नहीं बैठी। पुनः गायत्री के समझाने पर सावित्री बोली कि ब्रह्मा मेरे को भी रति दान दे तो मैं इनके कार्य के लिए झूठ कह दूँगी। तब गायत्री ने ब्रह्मा को समझाया कि अपना काम बनाने के लिए रतिक्रिया करे। ब्रह्मा ने सावित्री को रति दान देकर यह बड़ा पाप भी अपने सिर पर ले लिया। सावित्री ने कहा कि उसे **पुहपावति** नाम से पुकारा जावे। अब तीनों माता आद्यशक्ति के पास आ गए। तीनों ने माता के सम्मुख जाकर

प्रणाम किया। माता ने कुशल पूछी और कहा — हे ब्रह्मा ! क्या तुमने पिता का दर्शन पाया और यह दूसरी नारी कहाँ से लाये ! ब्रह्मा ने माता से कहा कि ये दोनों गवाह हैं कि मैंने पिता के दर्शन किये और उनके शीश को स्पर्श किया।

दोउ कहँ बढ़यो उमंग, छलमति बुद्धि प्रकाश किये ॥
 कह ब्रह्मा चल जननी पासा। तब गायत्री वचन प्रकाशा ॥
 औरो करौ युक्ति इक ठानी। दूसरी साखि लेहू उत्पानी ॥
 ब्रह्मा कहे भली है बाता। करहु सोई जेहि मानै माता ॥
 तब गायत्री यतन बिचारा। देह मैल गहि कीन्ह नियारा ॥
 कन्या रचि निज अंश मिलावा। नाम सावित्री तासु धरावा ॥
 गायत्री तिहि कह समुझावा। कहियो दरस ब्रह्मा पितु पावा ॥
 कह सावित्री हम नहिं जानी। झूठी साख दै आपनि हानि ॥
 यह सुन दोउ कहँ चिंता व्यापा। यह तो भयो कठिन संतापा ॥
 गायत्री बहु विधि समझायी। सावित्री के मन नहिं आई ॥
 पुनि गायत्री कहा बुझाई। तब सावित्री वचन सुनाई ॥
 ब्रह्मा कर मोसों रति साजा। तो मैं झूठ कहों यहि काजा ॥
 गायत्री ब्रह्माहिं समुझावा। दै रति या कहूँ काज बनावा ॥
 ब्रह्मा रति सावित्रीहिं दीन्हा। पाप मोट आपन शिर लीन्हा ॥
 सावित्री कर दूसर नाऊँ। कहि पुहपावति वचन सुनाऊँ ॥
 तीनों मिलिके चलिभे तहँवा। कन्या आदि कुमारी जहवाँ ॥
 करि प्रणाम सम्मुख रहे जाई। माता सब पूछी कुशलाई ॥
 कहु ब्रह्मा पितु दरसन पाये। दूसरि नारि कहाँ से लाये ॥
 कह ब्रह्मा दोऊ हैं साखी। परस्यो सीस देख इन आँखी ॥

यह सुनकर आद्या ने विचार करके गायत्री से पूछा क्या तुमने देखा कि ब्रह्मा ने दर्शन पाया, सत्य बताओ दर्शन कर कैसा लगा। गायत्री ने बताया कि ब्रह्मा ने जगदीश के शीश का दर्शन किया और शीश का स्पर्श

भी किया। स्पर्श कर जल ढारकर फूल चढ़ाया; मैं अपनी आँखों से देखती रही। हे माता! यह सत्य है। उसी फूल (पुष्प) से यह, पुहुपावती पिता के पास से उत्पन्न हुई, इसने भी पिता का दर्शन किया, इस पुहुपावती से पूछ लो।

मैं सब कुछ सच-सच कह रही हूँ इसमें एक रत्ती भी झूठ नहीं है। आद्यशक्ति ने पुहुपावती से कहा मैं तुमसे पूछती हूँ क्या ब्रह्मा ने दर्शन किये?

पंपावती (पुहुपावती) ने भी झूठी गवाही देते हुए कहा, हे माता! मैं सत्य से कभी पीछे नहीं हटती हूँ। चारमुखी ब्रह्मा ने पिता के शीश का दर्शन कर स्पर्श किया है यह निश्चय मान।

तब माता बूझे अनुसारी। कछु गायत्री वचन विचारी॥
 तुम देखा इन दर्शन पावा। कहो सत्य दर्शन परभावा॥
 तब गायत्री वचन सुनावा। ब्रह्मा दर्श सीस पितु पावा॥
 मैं देखा इन परसेउ शीशा। ब्रह्माहि मिले देव जगदीशा॥
 लेई पुहुप परसेऊ सीस पितु, इन दृष्टि मैं देखत रही॥
 जल ढार पुहुप चढ़ाय दीन्ह, हे जननि यह है सही॥
 पुहुपते पुहुपावती भयी प्रगट ताही ठामते॥
 इनहु दर्शन लह्यो पितुको पूछहु इहि वामते॥
 हे जननी यह है सही तुम पूछि लो पुहुपावती॥
 सबही साँच मैं तोसो कहूँ नहिं झूठ है एको रती॥
 कहु पुहुपावती मोहि, दरश कथा निरवार के॥
 यह मैं पूछों तोहि, किम ब्रह्मा दरशन किये॥
 पुहुपावती बचन तब बोली। माता सत्य वचन नहीं डोली॥
 दर्शन सीस लह्यो चतुरानन। चढ़े सीस यह धर निश्चय मन॥

ब्रह्मा को मिला श्राप और विष्णु व शिव को वरदान

गायत्री और पुहुपावती (पंपावती) की गवाही सुनकर आद्यशक्ति व्याकुल हुई, उन्हें अचरज हुआ कि यह कैसे हुआ; क्योंकि निरञ्जन ने तो कहा था कि वो किसी को कभी दिखेगा नहीं। आद्यशक्ति को रहस्य पता न चला वह चिंतित हुई कि ब्रह्मा, गायत्री और पंपावती झूठ बोल रहे हैं। शक्ति ने ध्यान लगाकर निरञ्जन से पूछा कि क्या इन्होंने तुम्हारा दर्शन किया! निरञ्जन ने भी ध्यान में उत्तर दिया कि ये झूठ बोल रहे हैं, मुझे किसी ने नहीं देखा। निरञ्जन ने कहा कि ब्रह्मा ने मेरा दर्शन नहीं पाया और इनसे झूठी गवाही दिलवाई है।

साख सुनत अद्या अकुलानी । भा अचरज यह मर्म न जानी ॥

अलख निरञ्जन अस प्रण भाखी । मोकहँ कोउ न देखै आँखी ॥

ये तीनहुँ कस कहहिं लबारी । अलख निरञ्जन कहहु सम्हारी ॥

ध्यान कीन्ह अष्टंगी तेहि छन । ध्यान माहिं अस कह्यो निरञ्जन ॥

ब्रह्मा मोर दरश नहिं पाया । झूठी साखी इन आय दिवाया ॥

तीनों मिथ्या कहे बनाई । जनि मानहु ये हैं लबराई ॥

अलख-निरञ्जन से यह सुनकर माता को बहुत दुःख पहुँचा और उन्होंने ब्रह्मा को श्राप दिया कि तेरी पूजा कोई नहीं करेगा, तूने मुझ से चरणों में बैठकर झूठ बोला है। तूने झूठ बोलकर और अकर्म-कर्म करके बड़ा पाप सिर पर लिया है। भविष्य में तुमसे उत्पन्न जो भी शाख होगी बार-बार बड़ा झूठ और पाप करेगी। तेरी कुल-शाख में प्रत्यक्ष में तो लोग बहुत नियम-आचार नीति दिखायेंगे-करेंगे किन्तु उनके अन्तर मन में पाप का ही विस्तार होगा। इसी प्रकार विष्णु के भक्त यदि अहंकार करेंगे तो नरक में जायेंगे। जो दूसरों को तो कथा-पुराण समझायेंगे और खुद उसके विपरीत-चलेंगे वे आप ही आप दुःख पायेंगे। जो ऐसे लोगों से ज्ञान सुनेंगे और अपने को भक्त मानकर देवों का अंश कहेंगे वे सभी निन्दित होकर काल के मुख में जायेंगे। देवी-देवताओं की पूजा विधि

करके दक्षिणा के लिए गला काटेंगे। इन लोगों के शिष्य भी यही सब करेंगे और उनमें परमार्थ नहीं रहेगा। ये परमार्थ के पास भी नहीं पहुँच सकेंगे और सबको शास्त्रों का अर्थ समझावेंगे। खुद स्वार्थ से भरा ज्ञान सुनायेंगे और स्वयं की पूजा जगत से करावेंगे। खुद के ही पूजने का स्थान बनायेंगे इसलिए परमार्थ के निकट नहीं होंगे। ये लोग स्वयं को ऊँचा मानेंगे और दूसरों को छोटा कहेंगे। हे ब्रह्मा ! तेरे साख-संतान खोटी ही होगी।

माता के श्राप से भरे वचन सुनकर ब्रह्मा मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़े।

यह सुनि माता कीन्हें दापा। ब्रह्मा को तब दीन्हों शापा ॥
 पूजा तोरि करै कोई नाहीं। जो मिथ्या बोलेउ मम पाहीं ॥
 इक मिथ्या अरू अकरम कीन्हा। नरक मोट अपने शिर लीन्हा ॥
 आगे है जो शाख तुम्हारी। मिथ्या पाप करहि बहु भारी ॥
 प्रगट करहिं बहु नेम अचारा। अन्तर मैल पाप विस्तारा ॥
 विष्णु भक्त सों करहिं हुँकारा। ताते परि हैं नरक मँझारा ॥
 कथा पुराण औरहिं समुझै हैं। चाल बिहून आपन दुख पैहें ॥
 उनसे और सुनै जो ज्ञाना। करिसो भक्ति कहों परमाना ॥
 और देव को अंश लखैहै। औरन निन्दि काल मुख जैहें ॥
 देवन पूजा बहु विधि लैहै। दछिना कारण गला कटैहें ॥
 जा कह शिष्य करै पुनि जाई। परमारथ तिहि नाहिं लखाई ॥
 परमारथ के निकट न जैहें। स्वारथ अर्थ सबै समुझैहें ॥
 आपन पूजा जगहि दिढ़ायी। परमारथ के निकट न जायी ॥
 आप ऊँच औरहि कहँ छोटा। ब्रह्मा तोर सखा होई खोटा ॥
 जब लग अस कीन्ह प्रहारा। ब्रह्मा मूर्छित मही कर धारा ॥

आद्यशक्ति ने फिर गायत्री को भी शाप दिया, कहा — गाय हो जा तेरे अनेक वृषभ पति होंगे और पाँच-सात संतान उत्पन्न कर विस्तार होगा।

जिस मुख से झूठ बोला है, उसी मुख से अब विष्ठा भी खाना। तूने अपने स्वार्थ के लिए झूठ बोला है, क्या समझकर यह गवाही दी थी। गायत्री ने माता का यह श्राप मान लिया। तब माता ने सावित्री की ओर देखा।

गायत्री जान्यो तिहिवारा। हुई हैं तोर पंच भरतारा ॥

गायत्री तोर होई वृषभ भरतारा। सात पाँच और बहुत पसारा ॥

धर औतार अखज तुम खायी। बहुत झूठ तुम वचन सुनाई ॥

निज स्वारथ तुम मिथ्या भाखी। कहा जानि यह दीन्ही साखी ॥

मानि साप गायत्री लीन्ही। सावित्रीहि तब चितवत कीन्ही ॥

फिर आद्यशक्ति ने पुहुपावती को भी श्राप दिया, कहा —तूने झूठ बोलकर अपने ही जन्म का नाश कर लिया। तुझ पर अब कोई विश्वास नहीं करेगा। तूने फूल से उत्पन्न होने का झूठ बोला जा तू केली (केतकी) फूल हो जा। काम-वासना की आसा करते हुए अब तू सदा नरक भोग, तू जहाँ भी होगी दुर्गन्ध ही फैलायगी। कुँठाओं पर उत्पन्न होगी और जो तुझे सींच कर लगायेगा उसका वंश नष्ट हो जाएगा।

पुहुपावती निज नाम धरायेहु। मिथ्या कह निज जन्म नशायेहु ॥

सुनहु पुष्पावति तुम्हरो विश्वासा। नहि पुजिहैं तुमसे कछु आसा ॥

होय कुगंध ठौर तब बासा। भुगतहु नरक काम गहि आसा ॥

जो तोहि सींच लगावे जानी। ताकर होय वंश की हानी ॥

अब तुम जाय धरो औतारा। क्योड़ा कैतकी नाम तुम्हारा ॥

शाप पाकर ब्रह्मा, गायत्री और कैतकी (पुहुपावती) तीनों अपने ही कुकर्म के कारण भ्रष्ट बुद्धि होकर दुःख से भर गये। साहिब धर्मदास से कहते हैं कि काल निरञ्जन का यह प्रचण्ड प्रहार सब पर होता है। माया के कामिनी रूप चर्म ने सबको डस लिया कोई नहीं बच पाया। ब्रह्मा, शिव, सनकादिक, नारद आदि कोई भी इससे बचकर भाग नहीं सका। हे धर्मदास! इससे कोई वे विरले लोग ही बच सकते हैं, जो सद्गुरु से सत्य-शब्द पाकर उसमें रमे रहें।

भये शापवश तीनों विकल मति हीन छीन कुकर्मते ।
 यह काल प्रचण्ड कामिनि डस्यो सब कहँ चर्मते ॥
 ब्रह्मादि शिव सनकादि नारद कोउ न बचि भागि हो ।
 सुनु धरमनि विरल बाचे सब्द सत सो लागि हो ॥

जब तीनों को श्राप दे दिया तो शक्ति मन ही मन पछताने लगी कि मैंने इन्हें श्राप क्यों दिया, क्षमा क्यों नहीं कर दिया; अब निरञ्जन पता नहीं क्या करेगा। तभी निरञ्जन ने आकाशवाणी की, कहा — हे भवानी! तूने क्या किया। मैंने तुम्हें सृष्टि का कार्य करने को कहा, लेकिन तुमने यह क्या चरित्र किया।

शाप तीनों को दै लियो, मनमाहिं तब पछतावई ।
 कस करहि मोहि निरञ्जना, पल छमा मोहि न आवई ॥
 आकासबनी तब भयी, यहु कहा कीन भवानिया ॥
 उत्पति कारन तोहि पठायो, कहा चरित यह ठानिया ॥

निरञ्जन ने कहा कि आगे भी जो कोई बलवान, निर्बल को सतायेगा, मैं उसे बदले में दुःख दूँगा। निरञ्जन ने आद्या को श्राप दिया कि जब द्वापर युग आयेगा तो द्रोपदी (गायत्री) के पाँच पति होंगे वे तुम्हारे (आद्यशक्ति) पुत्र होंगे और वे बिना पिता के होंगे। निरञ्जन की आकाशवाणी सुन आद्यशक्ति चुप रह गई और मन ही मन कहने लगी कि श्राप के बदले मैंने श्राप पाया; हे निरञ्जन मैं तो तेरे वश हूँ, इसलिए जो तेरी इच्छा है, वही कर।

नीचहिं ऊँच सिताय, बदल मोहि सो पावई ॥
 द्वापर युग जब आए, तुमहूँ पँच भर्तारि हो ।
 शाप ओयल जब सुनेउ भवानी । मन सन गुने कहा नहिं बानी ॥
 ओयल प्रभाव शाप हम पाया । अब कहा निरञ्जन राया ॥
 तोरे बस परी हम आई । जस चाहो तस करो उपाई ॥

विष्णु ने सत्य बोला था, इसलिए माता ने विष्णु को गोद में लेकर

कहा कि हे पुत्र ! तुझे पिता का दर्शन करवाती हूँ । मन ही सृष्टि का कर्ता है, मन से ही स्वर्ग, पाताल आदि हैं । मन को कोई देख नहीं पाता है । तुम प्रथम बार ज्ञान दृष्टि से देखो, और मेरे वचन को हृदय से परखो । मन ही स्थिर कर देता है और मन ही दूर ले जाता है । क्षण भर में अनन्त कलायें दिखाने की क्षमता मन में है । निराकार मन ही है जिसकी आशा में नित्यप्रति सब रहते हैं । फिर माता ने शून्य में विष्णु को ज्योति के दर्शन करवाये । कहा कि — श्वाँसा पलट कर शून्य में चढ़ाओ, आकाश में ध्यान लगाओ । माता ने जैसा कहा वैसा ही ध्यान विष्णु मन में लाये तब मन ही विष्णु को दिखाई दिया । निरञ्जन (मन) ने स्वयं को ज्योति स्वरूप दिखाया तो विष्णु हर्ष से भर गए और माता को शीश नवाया । कहा, हे जननी ! तुम्हारी कृपा से मैंने परमात्मा (जगदीश) के दर्शन कर लिये ।

अब माता विष्णु पहुँ आई । लीन्ह विष्णु कहँ गोद उठाई ॥
 पुनि अस कहेउ आदि भवानी । अब सुनहु पुत्र मम बानी ॥
 देख पुत्र तोहिं पिता भिटावों । तोरे मन कर धोख मिटावों ॥
 प्रथमहिं ज्ञान दृष्टि सों देखो । मोर बचन निज हृदय परेखो ॥
 मन स्वरूप करता कहँ जानो । मनते दूजा और न मानो ॥
 स्वर्ग पाताल दौर मन केरा । मन अस्थिर मत अहै अनेरा ॥
 क्षण महँ कला अनंत दिखावे । मन कहँ देख कोई नहिं पावे ॥
 निराकार मनही को कहिये । मन की आश निशि दिन रहिये ॥
 देखहु पलटि शून्य महँ जोती । जहवाँ झिलमिल झालर होती ॥
 फेरहु श्वास गगन कहँ धाओ । मार्ग अकाशहि ध्यान लगाओ ॥
 जैसे माता कहि समुझावा । तैसे विष्णु ध्यान मन लावा ॥
 तेहि पीछे धर्मदास, मन पुनि आप दिखायऊ ।
 कीन्ह ज्योति परकास, देखि विष्णु हर्षित भये ॥
 माताहि नायो शीश, बहु अधीन पुनि विष्णुभा ।
 मैं देखा जगदीश, हे जननी परसाद तुव ॥

शिष्य धर्मदास को कबीर साहिब ने रहस्य बताया कि यह काल का स्वभाव है; परमपुरुष का भेद विष्णु ने नहीं पाया। आद्यशक्ति ने मन रूपी काल विष दर्शाकर परमपुरुष रूपी अमृत का भेद गुप्त रखा क्योंकि वह स्वयं निरञ्जन से ठगी गई है, साथ देने विवश है। जैसे दीपक की लौ को देखकर पतंगा प्रसन्न होता है और प्रेमवश उसके पास आकर जलकर मर जाता है। ऐसे ही ज्योति स्वरूप काल भी किसी को जीवित नहीं छोड़ता है। करोड़ों विष्णु के अवतारों को उसने खा लिया; ब्रह्मा और शिवजी को भी नचा-नचा कर खाया। फिर साधारण जीवों के दुःखों को कहाँ तक कहा जाये। काल निरञ्जन प्रतिदिन एक लाख जीवों को खाता है, ऐसा विकराल कसाई है।

धर्मदास यह काल स्वभाऊ। पुरुष भेद विष्णु नहिं पाऊ ॥
 कामिनी की यह देखहु बाजी। अमृत गोय दियो विष साजी ॥
 देख ज्योति पतंग हुलासा। प्रीति जान आवै तिहि पासा ॥
 परसत होवे भस्म पतंगा। अनजाने जरि मरे पतंगा ॥
 ज्योति स्वरूप काल अस आही। कठिन काल वह छाड़त नाही ॥
 काहि विष्णु औतारहि खाया। ब्रह्मा रुद्रहि खाय नचाया ॥
 कौन विपति जीवन की कहँऊँ। परखि वचन निज सहजहि रहँऊँ ॥
 लख जीव वह नित्यहि खाई। अस विकराल सो काल कसाई ॥

कबीर साहिब ने शिष्य धर्मदास को यह भी समझाया कि आद्यशक्ति ने परमपुरुष का भेद क्यों नहीं दिया। काल-निरञ्जन का ध्यान क्यों करवाया! उसने यह चरित्र क्यों किया कि परमपुरुष को छोड़ काल के साथ क्यों हो गई! आद्यशक्ति ने जगत में यह नारी स्वभाव बनाया कि जब पुत्री घर में माता-पिता के साथ होती है तो उसे प्रसन्न-संतुष्ट किया जाता है। जब वह पति के घर चली जाती है तो उसी में खो जाती है, उसी से प्रेम करने लगती है, तब माता-पिता को भूल जाती है। आद्यशक्ति ने यही किया, वो बेगानी हो गई, इसी कारण उसने विष्णु को भी काल (मन) का रूप ही दिखलाया।

धर्म सुनहु जन नारि सुभाऊ । अब तोहि प्रगट वरणि समझाऊँ ॥
 होय पुत्री जेहि घर माहीं । अनेक यतन परितोष ताहीं ॥
 गई सुता जब स्वामी गेहा । राख्या तासु संग गुण नेहा ॥
 मात पिता सबै बिसरावा । धर्मदास अस नारि स्वभावा ॥
 ताते अद्या भई विगानी । काल अंग ह्वै रही भवानी ॥
 ताते पुरुष प्रगटने लाई । काल रूप विष्णुहि दिखलाई ॥

ज्येष्ठ पुत्र ब्रह्मा का मान माता पहले ही घटा चुकी थीं अतएव विष्णु को प्यार-दुलार करते हुए आशीर्वाद देकर कहा कि सब देवों में तुमहीं ईश्वर होंगे । प्रथम पुत्र ब्रह्मा मुझ से दूर हो गया है क्योंकि उसने झूठ और अकर्म को अपना लिया है । समस्त देवगण अब से तुम्हीं को श्रेष्ठ मानेंगे और सर्वत्र तुम्हारी ही पूजा होगी ।

पुनि माता कहिं विष्णु दुलारा । मरद्यो मान जेठ निजबारा ॥
 अहो बिस्नु तुम लेहु असीसा । सब देवन में तुमही ईसा ॥
 प्रथम पुत्र ब्रह्मा दूरि गयऊ । अकरम झूठ ताहि प्रिय भयऊ ॥
 देवन श्रेष्ठ तुमहिं कहँ मानहिं । तुम्हरी पूजा सब कोई ठानहिं ॥

आद्यशक्ति माता ने फिर शिव के पास जाकर पूछा हे शिव ! अब तुम अपने हृदय की बात कहो कि तुम्हें क्या चाहिए, मैं तुम्हें वचन देती हूँ कि तुम जो माँगोगे वो तुम्हें दूँगी । तब शिव ने हाथ जोड़कर कहा हे माता ! आपकी आज्ञा से मैं एक ही वरदान माँगता हूँ कि मेरी देह कभी न मिटे । यही दया कीजिए कि मैं सदा सशरीर रहूँ ।

रुद्र पास गई तब माता । तुम शिव कहो हृदय की बाता ॥
 माँगहु जो तुम्हरे चित भावे । सो तोहि देऊँ मात फरमावे ॥
 जोरि पानि शिव कहबे लीन्हा । देहु जननि जो आज्ञा कीन्हा ॥
 कबहुँ न बिनसे मेरी देही । हे माता माँगो वर एही ॥
 हे जननी यह कीजै दाया । कबहु न बिनसै मेरी काया ॥

अष्टांगी ने कहा हे शिव ऐसा नहीं हो सकेगा, दूसरा कोई अमर नहीं हुआ । तुम पवन योग करो जिसमें तप कर चारों युग तुम्हारी देह रहेगी ।

जब तक पृथ्वी, आकाश, ब्रह्माण्ड रहेगा तुम्हारा शरीर रहेगा कभी तुम्हारी काया नष्ट नहीं होगी।

कह अष्टांगी अस नहीं होई। दूसरा अमर भयो नहिं कोई ॥

करहु योग तप पवन सनेहा। रहै चार युग तुम्हरी देहा ॥

जौ लौं पृथ्वी आकाश सनेही। कबहुँ न विनशै तुम्हरी देही ॥

दूसरी ओर ब्रह्मा मन में बहुत उदास होकर विष्णु जी के पास गए। विष्णु से विनती करते हुए कहा — हे बँधु! तुम सब देवों के प्रधान हो, तुम पर माता की कृपा हुई है और मैं श्राप से विवश होकर बेहाल हूँ। मैंने अपनी ही करनी का फल पाया है, माता को दोष नहीं लगा सकता। हे भ्राता! अब तुम ऐसा यतन करो कि माता का वचन भी रहे और मेरा वंश भी चले।

ब्रह्मा मन में भयो उदासा। तब चलि गयो विष्णु के पासा ॥

जाय विष्णु सो विनती ठाना। तुम हो बँधु देव परधाना ॥

तुम पर माता भई दयाला। शाप विवश हम भये बिहाला ॥

निज करनी फल पाये हो भाई। किहि विधि दोष लगाऊँ माई ॥

अब अस जतन करो हो भ्राता। चले परिवार वचन रहे माता ॥

विष्णु जी ने ब्रह्मा से कहा तुम मेरे बड़े भ्राता हो, मैं छोटा हूँ, इसलिए मन से दुःख हटा लो, मैं आपकी सेवा करूँगा। जो भी मेरा भक्त होगा और वो जो-जो पुण्य आदि कर्म (यज्ञ, कीर्तन, हवन, दान आदि) करेगा, वो तुम्हारे ही परिवार की सेवा करेगा। इसीलिये ब्रह्माणों को ब्रह्मा का वंश मानकर सब उन्हीं से शुभ कर्म करवाते हैं।

यह सुन ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए, उनके चित्त का क्लेश मिट गया, क्योंकि वे जान गये कि अब उनकी संतान सुखी हो जाएगी; छल-कपट करके भी सुख से रहेगी।

कहे विष्णु छोड़ो मन भंगा। मैं करिहाँ सेवकाई संग्गा ॥

तुम जेठे हम लहुरे भाई। चित संशय सब देहु बहाई ॥

जो कोई होवे भक्त हमारा। सो सेवे तुम्हरो परिवारा।।
 ब्रह्मा भये आनन्द, जबहि विष्णु अस भासेऊ।।
 मेटेउ चित्त करद्वंद, सखा मोर सब सुखी भौ।।

इस समस्त सृष्टि रचना क्रम का भेद बताते हुए कबीर साहिब ने प्रमाण दिया कि मन रूप निरञ्जन को आद्यशक्ति के अलावा कोई नहीं जानता। प्रकृति रूप आद्यशक्ति ने स्वयं ही निरञ्जन का भेद छिपाकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी शरीर, कर्म, कर्मबंधन और कर्मफल के मायाजाल में बाँधकर सृष्टि संचालन सौंपा है। निरञ्जन संग आद्यशक्ति सहभागिनी होने के कारण जीवात्मा को मायाजाल में रखने विवश है। केवल एक सद्गुरु ही सत्यनाम देकर आत्मा को निरञ्जन की श्रृष्टि से मुक्त कर परमपुरुष के अमरधाम ले जाने में सक्षम है।

गण गन्धर्व ऋषि मुनि अरू देवा। सब मिल लाग निरञ्जन सेवा।।

इस तरह कबीर साहिब ने सप्रमाण बताया कि सभी कालपुरुष की भक्ति कर रहे हैं। आखिर दुनिया के लोग गलत भक्ति में क्यों लगे हैं? कुछ कारण तो होगा। हम अपने आस-पास देखें तो एक बात ज़ाहिर होती है कि कोई वृक्षों की, कोई नदियों की, कोई पत्थरों की भक्ति में लगा है, अथवा इन सबकी पूजा को भक्ति मान रहा है। इसमें आदमी का दोष नहीं है। कुछ लोगों ने समूह बनाकर अपने हितों के लिए इन्सानों को गलत भक्ति में लगाया है। यह आत्मा तो परमपुरुष का अंश है, उसी की है; लेकिन भक्ति सभी कालपुरुष की, पंच तत्त्वों की कर रहे हैं। **‘जो रक्षक तहँ चीन्हत नाहीं, जो भक्षक तहँ ध्यान लगाई’**।

यदि किसी पहाड़ पर कोई मूर्ति गाड़कर प्रचारित कर देता है कि फलाँ पहाड़ पर त्रेता युग की या द्वापर की मूर्ति निकल आई है तो पूरी दुनिया वहाँ जुट जाती है। उसी को भगवान जानकर भक्ति करने लगते हैं। फिर सब कहने लगते हैं यहाँ माथा टेको तो समस्त मनोकामना और कार्य पूर्ण हो जायेंगे।... ऐसे ही लोग किसी की समाधि बनाकर कहते हैं

कि फलां बाबा का स्थान है, वहीं कोई पुजारी बनकर रहने भी लगता है। प्रचार हो जाता है कि जो यहाँ नहायेगा, उसकी खुजली और सब रोग खत्म हो जायेंगे। दुनिया में लोग बीमार ही हैं, इसलिए भीड़ वहाँ पहुँच जाती है। हजारों-लाखों की भीड़ से किसी भी स्थान का शुद्ध पानी फिर इतना गन्दा हो जाता है कि अच्छा भला आदमी और बीमार हो सकता है। पर दुनिया कहाँ मानती है... दो डुबकियाँ लगाते हैं, पैसा चढ़ाते हैं और घर आ जाते हैं। विचार तो कोई करता ही नहीं और दूसरे को भी जाने की सलाह देते हैं। दूसरों को अपने समान बनाने में लुटवाने में खुशी मिलती है लोगों को। कोई यह नाटक समझने का प्रयास नहीं करता है। यही है अपने स्वार्थ में, गलत भक्ति में लगना। इसी बहाने पाखण्डी लोग पुजारी बनकर, लालच देकर, भ्रम फैलाकर खूब धन इकट्ठा करते हैं। पूरे समाज को स्वार्थियों ने इन्हीं चीजों में भटका रखा है। **‘खरे सयाने सबही भटके, तीन लोक में सबही अटके।’**

मैं जितना पाखण्ड का विरोध डंके की चोट पर कर रहा हूँ, उतना अन्य कोई नहीं कर रहा। आए-दिन-छल-कपट बढ़ता जा रहा है। कोई तांत्रिक बनकर, कोई ज्योतिषि बनकर कोई सयाना-ओझा बनकर तो कोई पुजारी बनकर दुनिया को लूट रहा है।... मेरी लड़ाई किसी देवी-देवता से नहीं है, किसी जाति-बिरादरी से नहीं है। देवी-देवताओं की इस ब्रह्माण्ड में अपनी सीमायें हैं बस यही बताता हूँ, उनका विरोध नहीं है। मेरा लक्ष्य पाखण्डियों से सावधान करके यह बताना है कि ईश्वर आप में है ... कहीं बाहर नहीं।

... साहिब ने और संतों ने कहा कि पाखण्डी तबके से बचो, इन्होंने बड़े-बड़े अच्छे मत के पंथों को खत्म कर दिया। पाखण्डी तबके के लोग बकरे भी चढ़ाते हैं, बलि भी देते हैं। एक निरीह जीव और उसके बच्चे को ले जाते हैं काटने... क्या बकरे के बच्चे की माँ नहीं रोती है! सभी प्राणी अपने बच्चों से प्रेम-ममता रखते हैं। इसलिए

मना करता हूँ यह सब नहीं करना? पाखण्डी तबका साहिब की नकल भी करता है, वे 'सत्य' भी लिख रहे हैं कबीर वाणियाँ भी ले रहे हैं, 'सद्गुरुवे नमः' भी लिख रहे हैं। एक दिन अचानक साहिब-बन्दगी भी लिख देंगे। फिर मेरी बात याद रखना, ये मेरी तरह बनने का प्रयास करेंगे और मेरी तरह सफेद कुर्ता-पायजामा पहनेंगे और कहेंगे कि हम असली साहिब हैं, क्योंकि इनका लक्ष्य भक्ति नहीं है। शुभ लक्ष्य भी इनका नहीं है। ... कुछ को तो केवल पैसा ठगना है... किसी भी तरह। हमारा लक्ष्य भक्ति की स्थापना करना है... पैसा कमाना नहीं है। पाखण्डी तबके ने महसूस किया है कि यदि साहिब बन्दगी पंथ रहा तो हमारा भण्डा-फोड़ करेगा। इसलिए तो निन्दा करने में जुटे हुए हैं। पर साहिब सद्गुरु शक्ति के आगे इनका वश नहीं चलेगा।

साहिब ने स्पष्ट चेताया है कि —

बिन जाने जो नर भक्ति करई ।

सो नहीं भव सागर से तरई ॥

कबीर साहिब से पहले यह भेद किसी ने नहीं बताया था कि मन रूप काल-निरञ्जन युगों-युगों से श्रृष्टि की रचना और विनाश करने क्यों विवश है। पूरा संसार ज्योत-स्वरूप नाम से निरंकार-निरञ्जन का ही नाम सर्वशक्तिमान परमात्मा के रूप में जानता है। यही समस्त वेद-पुराण गा रहे हैं कि वही अलख-पुरुष सृष्टिकर्ता है। साहिब ने स्पष्ट कर दर्शाया कि ज्योति-निरञ्जन ने हँसों के साथ आई आद्य कन्या को पत्नी बनाने हेतु विवश कर दिया; इसीलिए अमरलोक से सदा-सदा के लिये परमपुरुष द्वारा निष्कासित कर दिया गया। अब वह मन रूप में सृष्टिकर्ता, रचनाकर्ता और विनाशकर्ता कालपुरुष है। माया और प्रकृति रूप आद्यशक्ति ने सर्वप्रथम ब्रह्मा-विष्णु-महेश को उत्पन्न कर जीव जगत का संचालनकर्ता बनाया।

काल निरञ्जन की स्वाँस-वायु से निर्मित वेद ज्ञान मीन योनि (मछली योनी) में ही ले जाता है। क्योंकि ब्रह्मा ने स्वाँस-सार से ही वेदों को जाना था। इसीलिए वेद-ब्रह्म की सुरति ध्यान में पृथ्वी-आकाश की ज्योति का ही अनुसरण चित्त में कराती है। ब्रह्मा ने भी ध्यान में इतना ही जाना कि वेदों ने ज्योति-स्वरूप निरंकार का गुण गाया है। ब्रह्मा ने सुरति में यह भी जाना कि निराकार निरञ्जन ने ही सृष्टि को उत्पन्न किया है, आदि भवानी ने नहीं किया।

जब प्रथम बार पृथ्वी ने मनुष्यों और अन्य जीवों के भार से व्याकुल होकर विष्णु जी के पास गाय-रूप जाकर अपनी असहनीय स्थिति बताई। तब, विष्णु जी ने ध्यान स्तुति में सुरति से ज्योत-निरञ्जन को बताया कि हे पुरुष! कुछ उपाय करो। काल निरञ्जन ने शिव आदि चौदह पुत्रों को छोड़कर ब्रह्मा सहित पृथ्वी के समस्त जीवों को नष्ट करने की आज्ञा दे दी। पृथ्वी को अपने स्थान पर रहने भेजा गया। फिर अग्नि ने सब जीवों को मारकर विष्णु जी को सौंप दिया। समस्त तैंतीस करोड़ देवता भी समाप्त कर दिये। इस प्रकार समस्त जीवों को मारकर विष्णु जी ने अपने में सब कुछ स्थित कर लिया। तब से प्रत्येक रचनाकाल में हर दिन एक लाख जीव काल निरञ्जन को खाने दिये जाते हैं। जैसे अनाज की कोठी से किसान को बहुत प्रेम होता है, उसी प्रकार कालपुरुष को विष्णु भगवान से प्रीति है। विष्णु जी के सत्भाव से प्रसन्न होकर ही कालनिरञ्जन ने उन्हें अपना अंश देकर सृष्टि का पोषण और उत्पत्ति का भार सौंपा है। पुनः इसी सत्भाव के कारण ब्रह्मा जी को श्रीविष्णु के नाभि कमल से उत्पन्न कराया। ब्रह्मा के रजोगुण के कारण विष्णु जी की नाभि से पवन द्वारा त्रिगुण अण्ड उत्पन्न हुए और मधु-कैटभ दैत्य उत्पन्न हुए। पुनः सात-पाताल और मीन रूप पृथ्वी उत्पन्न कर प्रथम विष्णु सत्युग सहित जीव-जन्तुओं की रचना हुई। अट्ठासी सहस्र ऋषि, नौ-नाथ और चौरासी सिद्ध, इस में प्रथम विष्णु सत्युग के पश्चात हुए। कबीर साहिब ने शिष्य धर्मदास को हरि-चरित्र

की यह जानकारी देकर बहुत जिज्ञासा उत्पन्न कर दी और प्रश्नों का उत्तर देते हुए आगे बताया।

सत्युग में स्वर्ग, पाताल और पृथ्वी का बहुशक्ति-महादानी राजा बलि था। जो भी बलि से माँगा जाता था वह देता था और लेने वाला बार-बार हर्षित होकर आता था। एक बार पाताल के राजा बलि ने अपने मंत्री 'शुक्र' की सलाह से स्वर्ग का राज पाने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। श्री विष्णु भगवान 'वामन रूप' बनाकर बलि की यज्ञशाला में पाताल गए। विष्णु ने राजा बलि से कहा - मैं तुम्हारी दान की महिमा सुनकर आया हूँ, मेरे तीन-पग में जो भी आ जाए वही दान में लूँगा। राजा बलि ने इसे अत्यंत तुच्छ माँग समझ कर वामन रूप पण्डित विष्णु से रत्न-हीरा-माणिक माँगने को कहा। राजा बलि श्री विष्णु के प्रपंच को नहीं जान सका। श्री विष्णु ने तीन-पग में तीन लोक नाप कर राजा बलि से दान का वचन हर लिया। धर्म वचन के धनी राजा बलि के सामने तब विष्णु जी ने अपना हरिरूप प्रकट किया। इस प्रकार निरञ्जन की सृष्टि के सत्युग का पुनः छल युक्त प्रारम्भ हुआ। इसी से श्रृष्टि में कर्मफल, प्रतिरोध, प्रतिशोध और अवतारों द्वारा बदला लेने-देने का मन/निरञ्जन का मायाजाल है। चार युगों की बार-बार रचना, पालन और संहार इसी प्रकार होता रहा है।

निरंजन के मोक्ष धर्म का खुलासा करते साहिब जी कह रहे हैं श्री हरि विष्णु ने जो मुक्ति फल और मुक्ति कर्म दिये हैं असल में यह चार तरह की मोक्ष के नाम पर चार तरह के स्वर्ग हैं जो सगुण और निर्गुण भक्ति से प्राप्त होते हैं। स्वर्ग की अवधी समाप्त होने पर पुन मां के पेट में आना पड़ता है। मन (निरंजन) ने चार तरह के स्वर्ग को चार मुक्तियों का नाम देकर सभी जीवों को उलझा दिया। सभी जीव इसे ही परम मोक्ष मान कर प्राप्त करने के लिए अपना जीवन दाव पर लगाने लगे। मोक्ष-धर्म मानने के भ्रम से, कबीर

साहिब ने मनुष्यों को निकाला है। जीवात्मा केवल मनुष्य योनि में ही इस भ्रम से सद्गुरु का सत्य नाम पाकर निकल सकती है।

जब सनक-सनंदन ऋषियों के बैकुण्ठ द्वार पर पहुँचे तो वहाँ पर पहरा दे रहे जय और विजय ने उन्हें रोक दिया। इसे अपना अपमान जानकर ऋषियों ने जय-विजय को दैत्य होकर मृत्यु मण्डल में जाने का श्राप दे दिया। दोनों भाईयों ने श्री विष्णु को जाकर यह घटना बताई। श्री विष्णु ने ऋषियों को बुलाया और बिना सोचे समझे अत्याधिक दण्ड देने का दोषी मानकर बदले में जय-विजय के दैत्य-जन्म में उनका पुत्र होने का श्राप ऋषियों को दिया। यही बदला देकर सनक सनंदन ऋषि मुक्त होंगे। यही वैकुण्ठ-स्वर्ग और मृत्यु लोक में आवागमन का कालपुरुष द्वारा जीव विधान बना। वे ही जय-विजय पृथ्वी लोक में हिरण्यकुश और हिरनाक्ष दैत्य राजा हुए जिन्होंने शिव भक्ति करके देव-यक्ष से अधिक गुणी व बलशाली होने का वरदान पाया। हिरण्यकुश के पुत्र प्रह्लाद को अपने गुरु से विपरीत जाकर शिव भक्ति को अलख-निरञ्जन अनंत-नाम से श्री विष्णु को ही आराध्य बताया। हिरण्यकुश को श्री हरी विष्णु ने नरसिंह रूप धर अपनी जंघाओं पर रखकर नखों से मारा। अंत में भक्त प्रह्लाद ने श्री विष्णु की कृपा से स्वर्ग पाया और स्वर्ग का राजा इन्द्र बना।

स्वर्ग के राजा इन्द्र ने एक बार सिद्ध, ऋषि, ज्ञानी और गण-गन्धर्वों को न्यौता देकर इच्छा-भोजन का यज्ञ किया और सबका सत्कार किया। स्वर्ग का घण्टा नहीं बजने पर नारद ने विचार कर बताया कि ऋषि-जमदाग्नि ने 'इच्छा' को वश में कर लिया है। ऋषि जमदाग्नि रति करें या अपना ध्यान छोड़ें तो घण्टा बजेगा। इन्हीं ऋषि जमदाग्नि का राजा कश्यप की कन्या से विवाह होने पर भृगुकुल बना। त्रेता में भृगुकुल में परशुराम-रूप श्री विष्णु को श्रीराम ने पहचाना। राजा दशरथ ने शिकार करते समय श्रवण कुमार को मारने से श्रवण के माता-पिता ने शाप दिया कि तुम्हारा अंत भी पुत्र वियोग में होगा। इसी श्राप के बदले राजा दशरथ

के घर राम जन्में और राम के वनवास वियोग से राजा दशरथ की मृत्यु हुई।

इसी कर्मफल, प्रतिरोध, प्रतिशोध और बदला लेने-देने के अवतार क्रम में श्री विष्णु के लोकों की पुराण-कथायें हैं। एक बार राजा दक्ष ने समस्त देवों, ऋषियों और राजाओं को यज्ञ में आमंत्रित किया किन्तु शिवजी को आमंत्रित नहीं किया। अपने पिता का यज्ञ देखने की लालसा 'पार्वती' को हुई तो वे स्वयं ही शिव को राजी करके यज्ञ स्थल ले गईं। राजा दक्ष ने सती को शिव के साथ विवाह करना अपने कुल का अपमान बताया और शिवजी को यज्ञ में प्रवेश करने से रोक दिया। इस पर सती ने क्रुद्ध होकर यज्ञ-कुण्ड में कूदकर जान दे दी। यज्ञ सभा में हाहाकार मच गया और बहुत विध्वंस हुआ। शिवजी ने क्रोधित होकर सती का अधजला शव उठाया और कन्धे पर रखकर प्रचण्ड रूप धारण कर सृष्टि को नष्ट करने निकल पड़े। माता सती के शव के अंश भाग मृत्युलोक में 52 स्थानों पर गिरे जो 52 शक्तिपीठ कहलाये। इसके पश्चात 'सती' ने राजा हिमाचल के घर जन्म लिया जिसका नाम 'पार्वती' रखा गया। श्री विष्णु ने अब सोचा कि सती के बाद समाधि में लीन हुए शिव की समाधि भंग करने का उपाय केवल कामाग्नि जगाना है। इसी कामाग्नि को जगाने कामदेव और रति को तैयार कर शिवजी के पास भेजा गया।

ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मापुत्र नारद और ऋषि पाराशर भी कामाग्नि से नहीं बचे। ऋषि पाराशर सागर तट पर मच्छोदरी को देख मोहित हुए और जबरन विवाह किया। यही सोचकर श्री विष्णु ने पार्वती को शिव की पत्नि बनाने की योजना बनाई। इन्हीं पार्वती जी को राजा के घर देखकर नारद का 'मन' डोल गया और विष्णु जी के पास जाकर सुन्दररूप माँगा। श्री विष्णु ने उनका ब्रह्मचर्य बचाने बन्दर का मुख दे दिया। जब नारद को कुँवारी पार्वती ने दर्पण दिखाया तो नारद क्रोध में विष्णु जी के पास गए।

तब श्री विष्णु ने नारद को दक्ष के यज्ञ-हवन में सती के प्रवेश कर जलने की याद दिलाई तो नारद को अपने अपराध का बोध हुआ। नारद ने श्री विष्णु के पाँव पकड़कर क्षमा माँगी और पुनः नर रूप देने की प्रार्थना की।

ऐसी समस्त कथाओं से प्रमाणित करते हुए कबीर साहिब ने शिष्य धर्मदास की जिज्ञासाओं का समाधान करते हुए 'सत्य' का ज्ञान दिया। बताया कि सत्यलोक-परमपुरुष में समाने पर अर्थात् अपना निजधाम पाकर हँसात्मा काल निरञ्जन के प्रपंच भरे माया जाल अर्थात् तीन लोकों से मुक्त हो जाती है। संसार में मनुष्यों को यह भेद बताया कि मोक्षधाम अमरलोक में कर्म, कर्मबन्धन, कर्मफल, प्रतिरोध, प्रतिशोध बदला लेने-देने के अवतारों स्वर्ग-नरक की काल निरञ्जन लीलायें नहीं हैं। अमरलोक में कल्प, युग, युगान्तर देश-काल, सूर्य, तारामण्डल, आकाश नहीं हैं, रचना और विनाश नहीं है। सत्यलोक में पहुँच आत्मा सदा-सदा के लिए हँस होकर आनन्द का सागर हो जाती हैं। वहाँ निराकार-निरञ्जन (मन) किसी रूप में नहीं रह सकता।

भार से व्याकुल हुई पृथ्वी के गाय-रूप होकर विष्णु जी से प्रार्थना करने पर श्री विष्णु ने सब कुछ स्वयं में स्थित कर लिया। तब से सृष्टि का प्रथम श्री विष्णु सत्ययुग प्रारम्भ हुआ। कबीर साहिब ने इस प्रथम सत्ययुग से पूर्व के युगों का वर्णन करते हुए 14 युग बताये। (1) अघासुर युग, (2) बलभद्र युग, (3) द्वन्द्वर युग, (4) पुरवन युग, (5) अनुमान युग, (6) धीर्यमाल युग, (7) तारण युग, (8) अखिल युग, (9) विश्वा युग, (10) अक्षय तरुण युग, (11) नन्दी युग, (12) हिण्डोल युग, (13) कंकवत् युग और (14) धर्मदास जी की गहन जिज्ञासा पाकर फिर वर्तमान चारों युग-कल्पों सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर युग तथा कलियुग का वर्णन किया है। साहिब हर युग में भिन्न-भिन्न नामों से आए और सत्य नाम प्रदान किया।



मेरा नाम 'निरञ्जन' है

मैं सिरजों मैं मारों, मैं जारों मैं खाऊँ।

जल-थल-नभ में रमिरहौँ, मोर निरञ्जन नाऊँ ॥

साहिब ने शिष्य धर्मदास को बताया कि निरञ्जन ने स्वयं कहा है कि — 'मैं ही सबकी रचना करता हूँ, मैं ही सबको अग्नि में जलाता हूँ और मैं ही खाता हूँ। जल-थल-आकाश में सर्वत्र मैं ही समाया हूँ - मेरा नाम निरञ्जन है।'

मैं ही शुभ अशुभ और पुण्य-पाप का सृजक हूँ।

मैं ही तीरथ व्रत यज्ञ जप तप कर्म निर्माता हूँ।

मैं ही धर्म अधर्म के जीवन कर्मों का व्याख्याता हूँ।

मैं ही कर्मफल बैकुण्ठ स्वर्ग-नरक प्रदाता हूँ।

मैं 'मन' ही कर्म संचय स्रोत बन जाता हूँ॥

मैं ही साकार मैं ही निराकार बन जाता हूँ।

मैं ही सौर्य-मण्डलों में ज्योतस्वरूप दिखलाता हूँ।

मैं ही सप्त आकाश और सप्तसागर मझधार हूँ।

मैं ही रचनाकार मैं ही प्रलय-महाप्रलय आधार हूँ।

मैं 'मन' ही सकल सृष्टि का करतार हूँ॥

इस मन का सम्पूर्ण सृष्टि में विस्तार है जिसका कोई छोर और पार नहीं है। सारा संसार मन की ही रचना है। जीव-संसार में ही सात प्रकार की सृष्टियाँ हैं जिनमें मनुष्य, देवता, नाग, किन्नर, पशु, पक्षी और प्रेतों का वास कहा जाता है। कबीर साहिब ने चेताया कि मन ही गोरखनाथ मन ही गोविंद और मन ही ओघड़ बनकर मनुष्यों से कर्म करवाता है। मन को पूरे जतन से साथ रखने के कारण ही मनुष्य स्वयं को कर्ता बना लेता है। वही सूक्ष्म कीट-

जीव बनकर पल भर में विषय भोग कर नष्ट करता है। मनुष्य देह पाकर भी जीव सद्गुरु शब्द को मन के कारण ग्रहण नहीं कर पाता है। यह मन पंछी बनाकर आकाश की ऊँचाईयों में ले जाता है और यही गिराकर माया के पास ले आता है। इसीलिए शरीर को मन की इच्छानुसार कर्म में मत लगाओ। शरीर को वश में रखो, मन जाता है तो जाने दो। शरीर की इन्द्रियों को वश में रखने पर मन कमान से उतरे हुए तीर जैसा हो जावेगा। जब कमान ही उतरी हो तो तीर रूपी मन शरीर रूपी कमान से कुछ नहीं कर सकेगा। मन से मुक्त शरीर ही सत्यमार्ग अर्थात् सद्गुरु शरण में आत्मस्वरूप को पाता है।

यह मन सकल जगत विस्तारा। यह मन को कछु वार न पारा ॥

मन को रचना सकल जहाँना। सात प्रकार सृष्टि जग नाना ॥

मानुष देव नाग कहि देता। किन्नर पशु पक्षी अरू प्रेता ॥

कबीर मन गोरख मन गोविंदा, मन ही ओघड़ होय।

जो मन राखे जतन करि, तो आपै करता होय ॥

कबीर कीटि कर्म पल में करे, यह मन विषया स्वाद।

सत्गुरु शब्द माना नहीं, जन्म गँवाया बाद ॥

कबीर मन पंक्षी भया, बहुत चढ़ा आकाश।

उहाँ ते फिर गिर पड़ा, मन माया के पास ॥

मन जाता है तो जान दे, गहिके राख शरीर।

उतरा परा कमान से, क्यों कर लागै तीर ॥

मन और इन्द्रियों को वश में करने के लिए माँस, मदिरा और अभक्ष्य वस्तुओं का सेवन वर्जित है। इन चीजों के सेवन आत्म-चेतना के ही विरुद्ध है, मलिन है किन्तु मन यह सब करवा रहा है। सभी जीव शरीर गन्दगी, मल-मूत्र से भरे हैं। चारों योनियों के जीव जल और मल में ही उत्पन्न होते हैं। शरीरों की शुद्धता-अशुद्धता और पहचान जल से गन्दगी धोने के बाद ही होती है। जीव-जन्तु मल से उत्पन्न होते हैं उन्हें खाकर अज्ञान ही उत्पन्न होता है। जल के द्वारा मिट्टी से जो फल और अन्न पैदा

और अकुँरित होते हैं उनसे ही भूख का दुःख दूर करे। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि नाना प्रकार के जीव जन्तु सभी का दुःख एक समान है। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जो जीव माँस खाने वाले हैं वे कभी जीव के रक्षक नहीं होते उन पर पूर्ण रूप से मन का ही नियंत्रण होता है। इसीलिए माँस खाने वाले दयाहीन होकर अधोगति अर्थात् निचली योनियों को प्राप्त होते हैं। नरक ही भोगते हैं। माँस खाने के लिए अनेक निर्दोष जीवों की हत्या करते हैं। जीवों का प्राण हनन कर दुःख देने वाले स्वयं ही उन जीवों द्वारा बदला लेने के लिए भावी जन्म की तैयारी करते हैं। माँस-मदिरा सेवन करने वालों की संगति मन को शक्तिशाली बनाती है, ऐसी संगति से आत्मभक्ति पथ पर जाना सम्भव नहीं है। कबीर साहिब ने चेताया कि जिसका गला तुम काटोगे, जिसका माँस खाओगे फिर वह भी निश्चित ही तुम्हारा गला कटेगा।

मद्य माँस भक्ष मलिन बखानी । ताहि न ग्रहण करे नर ज्ञानी ॥
 निज निज हृदय विचारे येहा । मल अरू मूत्र कि जेती देहा ॥
 सकल अभक्ष घिनावन सोई । चहुँ खानि जलमल ते होई ॥
 शुद्ध अशुद्ध ताहि पहिचानी । जलकृत शुद्ध अशुद्ध मलानी ॥
 मलकृत जो जिव जन्तु उपाये । हो अज्ञान ताहि के खाये ॥
 जलकृत जो फल अन्न अंकुरा । ताते भूख को दुःख कर दूरा ॥
 नर पशु जीव जन्तु खग नाना । सबको दुख सुख एक समाना ॥
 नर पशु खग जो माँस के भक्षक । सो नहिं कबहु जीव के रक्षक ॥
 जिनके हृदय दाया नाहीं । सोई अधोगति माहिं समाहीं ॥
 माँसु अहारी के कस दाया । एक खाय बहु मारि गिराया ॥
 जो कोई काहूको दुःख देहै । बदला तासु आप शिर लेहै ॥
 सुरापान अरू माँस अहारी । नरक धाम सो अवश्य सिधारी ॥

कह रहे हैं — माँस अहारी मनुष्यों को पूरी तरह राक्षस ही जानना चाहिए। काजी और गुरु को बेटा मरने से हृदय में पीड़ा होती है। साहिब

परमात्मा तो जगत् का पिता है वह किसको बेटा नहीं माने। किसी जीव को काटने और पीड़ा देने का पाप किसी भेष में न करें। ऐसा पाखण्ड करने वाला निश्चय ही किसी राम को जानने वाला है, इसमें सन्देह है। साहिब की वाणी है —

माँसा अहारी मानवा, परतख राक्षस जान।
ताकी संगत मति करो, होय भक्ति में हान॥
कबीर काजी को बेटा मुवा, उर में सालै पीर।
वह साहिब सबको पिता, भला न मानै वीर॥
कबीर काटाकूटि जे करे, यह पाखण्ड को भेष।
निश्चय राम न जानही, कहै कबीर सन्देह॥
कहता हूँ कहि जात हों, कहा जो मान हमार।
जिसका गला तू काटिसो, फिर गला काटि तुम्हार॥

नानकदेव जी ने भी कहा कि कैसी भेड़, कैसी बकरी और कैसी अपनी संतान सबका एक ही रक्त माँस है। तुम्हें किसने बनाया है; इस देह रूपी घट से सबका मिलन होता है। सबकी देह में समान पीड़ा होती है। सम्पूर्ण जगत् की आत्मा साहिब कबीर की प्रिय हैं।

क्या बकरी क्या भेड़ है क्या आपन जाया।
रक्तमासु सब एकहै तुके किन फरमाया॥
नानक घट परचै भई सबही घट पीरा।
सकल जगत् के आत्मा महबूब कबीरा॥

गोस्वामी तुलसीदास ने कहा — ‘श्रुति पुराण कहें उपाई, छूटे न अधिक अधिक अरूझाई।’ क्योंकि वेद भी तो निरञ्जन ने ही बनाये और उसी मन ने अवतार धारण किये, रक्षक की कला दिखाई। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी इसी कारण यह रहस्य जान नहीं पाये। आज भी आप जगह-जगह और दूरदर्शन चैनलों पर महात्माओं को सुनते होंगे कि वे सब सगुण-निर्गुण (निराकार) की बात ही करते हैं। कोई किसी एक की भक्ति बता

रहा है तो कोई किसी दूसरे की। जिस भगवान-देवी-देवता की महिमा बतायेंगे उसे ही मोक्षदाता कल्याणकारी कहेंगे। इन महात्माओं के लिए सब एक ही हैं। कष्ट देने वाले निरञ्जन भगवान को ही सबने अपना मीत, अपना रक्षक समझ लिया है।

अनेक कुकर्मों और जीवों को बँधन में कर सताने के कारण परमपुरुष ने निरञ्जन की सुरति-नाल तोड़ दी। श्राप दिया कि वह कभी परमपुरुष का ध्यान नहीं कर पाएगा और अमरलोक नहीं आ पाएगा। परमपुरुष ने निरञ्जन को मिटाने का भी सोचा, पर फिर सोचा कि इसे मैंने 17 चौकड़ी असंख्य युग का राज्य दिया है, यदि मिटा दिया तो मेरा शब्द कट जाएगा। इसलिए मिटाया तो नहीं पर श्राप दिया कि हर दिन एक लाख जीवों को निगलेगा तो भी तेरा पेट नहीं भरेगा। इसी कारण मन रूप निरञ्जन दिन-रात कभी शान्त नहीं है, चलायमान है, कामनाओं से भरा जीव को नचा रहा है। चैन नहीं लेता सदा असन्तुष्ट रहता है, **मन**।

अनन्त युगों से जीव निरञ्जन '**मन**' और आद्यशक्ति के शिंकजे में है। साहिब ने बहुत प्यारे शब्दों में पुनः '**मन**' का वर्णन करते हुए कहा —

स्वर्ग पाताल मृत्यु मण्डल रचि, तीन लोक विस्तारा॥
 हरीहर ब्रह्मा को प्रगटायो, तिन्हें दियो शिर भारा॥
 ठाँव ठाँव तीरथ रचि राख्यो, ठगवे को संसारा॥
 चौरासी बीच जीव फँसावे, कबहुँ न होय उबारा॥
 जारि बारि भस्मी करि डारे, फिरि देवे अवतारा॥
 आवागमन रहे उरझावे, बोरे भव की धारा॥
 सद्गुरु शब्द बिना चीन्हें, कैसे उतरे पारा॥
 माया फाँस फँसाय जीव सब, आप बने करतारा॥
 सद्गुरु शरण जो अमरलोक है, ताको मूँदो द्वारा॥
 नेम धर्म आचार यज्ञ तप, ये उरले व्यवहारा॥
 जासे मिले अखण्ड मोक्ष सुख, मारग है न्यारा॥

काल जाल से बाँचा चाहो, गहो शब्द तत्त सारा।

कहहिं कबीर अमर करि राखो, जो परखो टकसारा॥

‘ठाँव-ठाँव तीरथ रचि राख्यो, ठगवे को संसारा।’ विचार करें, क्या कह रहे हैं। दुनिया को ठगने के लिए तीरथ आदि स्थान निरञ्जन ने बनाये जिससे जीव इन्हीं में उलझा रहे। कोई सत्य की तरफ न चल पाये। भाईयों! यह गम्भीर गूढ़ विषय है, इस पर गहराई से विचार करें। फिर, ‘माया फाँस फँसाय जीव सब, आप बने करतारा। सद्गुरु शरण जो अमरलोक है, ताको मूँदो द्वारा॥’ सबको माया में फाँस दिया और परमात्मा बनकर बैठ गया। हँसात्मा का मूल घर जो अमरलोक है, उसका द्वार ही बंद कर दिया। कभी भी सद्गुरु की शरण में नहीं पहुँचने देता है आसानी से, यह मन। नियम, धर्म, यज्ञ, तप आदि तो तीन लोक का व्यवहार है, उसी में मनुष्यों को उलझाय रखता है। मुक्ति का मार्ग तो इनसे न्यारा है जो सद्गुरु शरण में सच्चे नाम को पकड़ने से ही मिलेगा।

मन गहन अँधकार में रहता है, उसे कोई देख नहीं सकता है। जिस दिन मन समझ आ जाएगा, दुनिया का स्वरूप ही बदल जाएगा। मैं प्रायः कहता हूँ कि दुनिया में एक भी बुद्धिमान आदमी नहीं देखा, यह इसलिए कि आदमी अन्दर की व्यवस्था नहीं देख पा रहा है। सभी मन की इच्छाओं की पूर्ति में लगे हैं। ‘मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद कोई एक।’ जो दूसरों की दिशा में, बहकावे में चलता है, बुद्धिमान नहीं हो सकता है। मन आपको विनाश की ओर ले चलता है। ‘मन को कोई देख न पाये, नाना रंग दिखाये।’ वाणी है —

मन ही आहे काल कराला। जीव नचाय करे बेहाला॥

जीव के संग मन काल रहाई। अज्ञानी नर जानत नाहीं॥

आत्मा को किसी चोरी की जरूरत नहीं है, किसी छल-कपट की जरूरत नहीं। ये सब शरीर की जरूरत है, शरीर का धोखा है। मन जो भी कर्म करवा रहा है शरीर के निमित्त है। मन की प्रेरणा से मनुष्य कर्म कर

रहा है। शरीर को केन्द्र बिन्दु बनाकर इसी की आवश्यकता की पूर्ति के लिए मन कर्म करवा रहा है। जब आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती तो मन बुरे कर्म भी करवाता है। आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है तो मनुष्य अच्छे कर्म भी कर लेता है। यह तय है कि किसी भी कीमत पर मन आत्म कल्याण के रास्ते पर नहीं चलने देगा। संसार के पदार्थों की तरफ ही खींचेगा।

इसीलिए साहिब ने कहा कि —

‘तेरा बेरी कोई नहीं, तेरा बेरी मन।’ आत्मज्ञान में बाधक मन है। इस मन की हुकुमत आत्मा मान रही है। मृत्यु के समय कोई विद्या काम नहीं आएगी। शिक्षा के विरुद्ध नहीं हूँ पर, यदि सोचें कि भौतिक-ज्ञान द्वारा आत्म साक्षात्कार करें, मन को समझें तो यह नहीं हो पाएगा। दयानन्द सरस्वती जब विरजानन्द सरस्वती के पास गए तो बाहर से द्वार खटखटाया। विरजानन्द जी ने पूछा — कौन? दयानन्द जी ने कहा — यही तो जानने आया हूँ। तब विरजानन्द जी ने कहा — तो फिर जो पोथियाँ पकड़ रखी हैं, पहले उन्हें फेंक आओ। पोथियाँ कभी आत्मज्ञान में सहायक नहीं हो सकती हैं। आत्मा में मन रूपी सुई चुभी है, बस इसे बाहर निकालना है।

मन आत्मा का दुरुपयोग कर रहा है। हरेक के पास एक धुन है, मन इस धुन को बाहर उलझा रहा है। पहले बच्चा माँ से प्रेम करता है, माँ नहीं मिले तो रोने लगता है। क्योंकि धुन माँ में है, बच्चे की। वो स्पन्दन से जान जाता है कि यह माँ है। थोड़ा बड़ा हुआ तो धुन निकल कर खेल में चली जाती है। जहाँ भी धुन लगाओगे वहीं आनन्द आएगा। फिर खेल में धुन होने से माँ के बुलाने पर भी नहीं आता है, क्योंकि माँ से धुन हट गई। और बड़ा होने पर पढ़ने में लगाता है यही धुन। बच्चे रात के 12 बजे भी पढ़ रहे होते हैं और सुबह 4 बजे फिर उठकर पढ़ने लगते हैं। धुन पढ़ने में लग गई। शादी के बाद विषय विकारों में लग जाती है, यह धुन। गुरु के अलावा यह धुन जहाँ भी लगाई, घाटा ही घाटा है। पूरा जीवन धुन बाहर लगी रहती है।

आशय यह है कि मज्जा धुन में है, पर मनुष्य इसे बाहर ढूँढ़ता रहता है। कस्तूरी के मृग वाली बात है यह। मृग सोचता है, महक कहीं बाहर से आ रही है, वो जंगल में बूटी-बूटी सूँघता फिरता है। सारा जीवन वो बाहर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते गँवा देता है, पर उसे पता नहीं चलता कि यह महक तो उसके भीतर से आ रही है।

आपकी सोच, आपका फैसला, आपकी इच्छा मन के ही काबू में है। आपका मन आपके काबू में नहीं है। फिर बुद्धिमान कैसे हो!

चश्म दिल से देख तू, क्या क्या तमाशे हो रहे,
दिल सतां क्या-क्या हैं तेरे दिल सताने के लिए।
इस दिल का हुज़रा साफ़ कर, जाना के आने के लिए,
ध्यान औरों का उठा, उसको बिठाने के लिए।
एक दिल लाखों तमन्ना, उस पर भी ज्यादा हवस,
फिर ठिकाना है कहाँ, उसको बिठाने के लिए।

मन रूप परमात्मा ने इस मनुष्य शरीर के साथ ऐसा शैतानी खजाना भर दिया है कि साहिब-परमपुरुष को अपने अन्दर लाने कोई स्थान नहीं बचे। काम के वाण-मारण, मरण, वशीकरण, मोहन, और उच्चाटन से सबकी मति मार दी है। काम के साथ रति-लालच और लोलुपता रूपी स्त्री, पुत्र और बन्धु सबको बाँधने वाले हैं। क्रोध के साथ हिंसा-अविचार-भूल रूपी स्त्री-पुत्र और बन्धु संसार को जलाकर विनाश करने तत्पर हैं। लोभ के साथ इस देह की स्त्री-तृष्णा है तो बेटा है पाप। अर्थात् लोभ पाप का बाप है। इस शरीर रूपी देश में अज्ञान रूपी मोह का निवास है जिसके साथ तृष्णा-इच्छा-लालच-पाखण्ड-कपट-रोग और शोक क्रमशः स्त्री, बेटी, बेटा, मंत्री, वजीर और मित्र रूप हैं। फिर अहंकार के साथ निन्दा रूपी स्त्री है। इन पाँचों परिवारों के हाथों मन सबको मरोड़े जा रहा है। इसी से साहिब ने सतर्क किया कि —

चश्म दिल से देख तू, क्या-क्या तमाशे हो रहे...

निरञ्जन की सृष्टि में साहिब (परमपुरुष) के अंश (हँसों) की इतनी बुरी हालात बना दी। वहीं ऋषि-मुनियों ने शास्त्रों-पोथियों में इसे पता नहीं किसकी लीला कह दिया। सबकी मान्यता है कि यह शरीर परमात्मा ने दिया है हमें, ठीक ही कहते हैं। पर, एक बात हम समझ नहीं पाये कि परमात्मा वास्तव में है कौन! **भाईयों, परमात्मा नाम ही कालपुरुष का है, वही मन है, वही जीवों की उत्पत्ति करता है और वही नष्ट भी कर देता है। इतने कष्ट देने वाला और विनाश कराने वाला हमारा साहिब हो ही कैसे सकता है! नहीं हो सकता; नहीं है। साहिब तो स्वयं ही मोक्षधाम है।**

यद्यपि सच्चे संतों ने भी कई जगह पर साहिब के स्थान पर मजबूरी में 'परमात्मा' शब्द का प्रयोग किया है; क्योंकि मनुष्य ने अपने परमपुरुष (साहिब) को परमात्मा ही समझ लिया है अथवा परमात्मा को ही 'साहिब'।

यह उलझन इसलिए आई क्योंकि साहिब (सत्यपुरुष) का ज्ञान मनुष्यों को मिल नहीं पाया। इस उलझन को ठीक से समझना होगा। संतों ने दो पुरुष कहे — एक सत्यपुरुष और एक कालपुरुष। सत्यपुरुष को ही साहिब कहा और कालपुरुष को परमात्मा (निरञ्जन)। इसको ऐसे समझें—

1. सत्यपुरुष के नाम :: परमपुरुष, सत्यपुरुष, अविनाशी पुरुष, ज्ञानी पुरुष और साहिब हैं।

2. निराकार निरंजन के नाम—इसको अलख निरंजन, निरंकार, नरायण, आदि-निरंजन आदि नामों से जाना जाता है। संसारिक लोग इसे राम, रहीम, कादर, क्रीम, ओंकार, प्रमेश्वर, प्रमात्मा, हरी, हरि, अद्वैत, भगवान तथा मन, ब्रह्मा, आदि नामों से याद करते हैं। इसी काल निरंजन के ग्रंथ पोथियों में हजारों नाम लिखे गए हैं।

वास्तव में वेद में कालपुरुष के सहस्र नाम हैं। पर, साधारण मनुष्य उन सभी से परिचित नहीं है। परमात्मा और कालपुरुष को दुनिया ने अलग-अलग समझ लिया है, वास्तव में दोनों एक ही सत्ता के नाम हैं।

संतों ने मनुष्य के लिए ही साहिब के स्थान पर अधिकतर परमात्मा शब्द का प्रयोग किया। पक्षी, पक्षी को समझता है; कुत्ता, कुत्ते को। इस तरह हर पशु अपने समान देह वाले को ही जानता-समझता है। परमपुरुष में समाय संत मनुष्य देह में ही आकर सत्य प्रकट करते हैं और मनुष्य देह के कष्ट भोगने के साथ विरोधियों से दण्ड भी भोगते हैं। इन्सान कालपुरुष के बनाये शरीर में रहकर ऐसे ही किसी शरीर धारी को सुनता-समझता है। संतों ने 'राम' शब्द का प्रयोग भी इसी कारण किया कि मनुष्य सुनने-समझने की ओर अग्रसर तो हो। दुनिया ने सोच लिया शायद दशरथ पुत्र राम के लिए ही संत भी बोल रहे हैं। नहीं, संतों ने इस शंका को मिटाने के लिए स्पष्ट किया —

जग में चारों राम हैं, तीन राम व्यवहार।
चौथा राम निज सार है, ताका करो विचार ॥
एक राम दशरथ घर डोल, एक राम घट घट में बोले।
एक राम का सकल पसारा, एक राम त्रिभुवन तें न्यारा ॥
साकार राम दशरथ घर डोले, निराकार घट घट में बोले।
बिन्दु राम का सकल पसारा, निरालम्ब राम सबहीं ते न्यारा ॥

तीन लोकों के स्वामी जिसका जगत् पसारा है, उसने तो शरीरों में जीवों को रखकर दुःखों में डाला है। जब मनुष्य ही क्या ऋषि, मुनि, ज्ञानी, देवता आदि कोई सुखी नहीं है तो फिर अन्य जीवों में किसे सुख होगा।

सुर नर मुनि अरू देवता, सात दीप नव खण्ड।
कहे कबीर सब भोगिया, देह धरे का दण्ड ॥

दुनिया के धर्म प्रधानों-मुखियाओं ने संतों को भी नहीं छोड़ा कठोर शारीरिक यंत्रणायें दीं। यही निरञ्जन का धर्मजाल है। इसीलिए संतों ने समझाया —

पहला राम :: दशरथ का बेटा [रामायण और
रामचरित मानस आदि में जिसके
जीवन का वर्णन है]

- दूसरा राम :: घट-घट में बैठा अर्थात् निराकार
[सभी धर्मशास्त्रों में जिसका निर्गुण
वर्णन है]
- तीसरा राम :: बिन्दु राम अर्थात् जो सबकी उत्पत्ति
का कारण है।
- चौथा राम :: निरालम्ब राम अर्थात् सत्यपुरुष
[कबीर साहिब तथा सच्चे संतों की
वाणी में जिसका उल्लेख है]

त्रिभुवन यानी तीन लोक से परे निरालम्ब, सात आकाशीय ब्रह्माण्डों और सात अन्धकारमय महाआकाशों से न्यारा है, 'साहिब'। साकार-निराकार की सीमा तीन लोकों तक है। निराकार-भक्ति को सर्वोच्च ज्ञान भक्ति संसार के लोगों ने मानी है। निराकार परमात्मा है; साहिब सत्यपुरुष नहीं।

सारा संसार निराकार को परमात्मा मानकर उसी में अनुरक्त हो गया। साहिब सत्यपुरुष तो शब्द-प्रकाशी स्वरूप हैं, ज्योतिस्वरूप नहीं है। परमात्मा शब्द भी भ्रमांक है। आत्मा-परमात्मा कहते हैं। आत्मा शब्द भी भ्रमांक है। परमसत्ता को संतों ने साहिब कहा, ऐसे ही उसकी अंश चेतन सत्ता को हँस कहा है। महापुरुषों ने भी अपने नाम के साथ परमहँस लगाया। संत उसी परमसत्ता में मिल उसी का रूप हो गये होते हैं। उनमें और साहिब में तनिक भी भेद नहीं होता, इसलिए हँस ही परमहँस होते हैं। जब चेतन सत्ता अपने लोक पहुँचती है तो उसकी संज्ञा है - हँस। जब चेतन सत्ता सद्गुरु कृपा से वहाँ पहुँच साहिब में समाती है और फिर उसी का रूप होकर हँसों के कल्याण हेतु वापिस आती है तो उसकी संज्ञा है — परमहँस या संत सद्गुरु। वे काल की दुनिया में रहते हैं, पर उसका कुछ भी प्रभाव उन पर नहीं पड़ता। वे जब चाहें तो शरीर से, प्राणों से और मन से बाहर निकल जाते हैं। इसलिए वे संसार में रहते हुए भी आजाद होते हैं और दूसरों को भी निरञ्जन के दायरे से आजाद कर ले जाते हैं।

जब हँस मन में मिला तो उसे आत्मा कहा, जब उसमें प्राण मिले तो उसे जीव कहा। जीव में मिला प्राण ही दस प्राण वायु के रूप में शरीर में है — (1) अपान, (2) उदान, (3) समान, (4) प्राण, (5) सर्वतन व्याम, (6) नाग, (7) धनञ्जय, (8) किरकिल, (9) जम्भाई और (10) देवदत्त ये दस महाप्राण हैं। जीव शरीर में इन दस महाप्राणों की श्रृंखला में बाँध कर निरञ्जन ने माया में उलझाया, इसे ही जीवात्मा कहा गया है। अपान वायु गुदा स्थान पर है जो मल को बाहर करती है। उदान वायु कलेजे पर है। समान वायु सब जोड़ों को क्रियाशील रखती है। प्राण वायु हृदय में वास करती है। सर्वतन व्याम पूरे शरीर में फैली है। नाग वायु कण्ठ को स्वस्थ रखती है। धनञ्जय वायु भुजाओं और सीने को बलिष्ठ बनाती है। किरकिल वायु नासिका में रहकर ट्रैफिक संचालक है अर्थात् छींक द्वारा रुकी हुई वायुओं को राह देती है। जम्भाई आलस्य को बाहर फेंकती है और गर्मी के प्रभाव को कम करती है। देवदत्त वायु नैत्रों को स्वस्थ रखने पलकों को उठाती-गिराती है। इस तरह परमपुरुष का अंश, हँस जब मन (निरञ्जन) में मिला तो आत्मा कहलाया और जब उसमें प्राण मिले तो जीव कहलाया। जीव शरीर रूपी पिंजड़े में आकर रोम-रोम में समा गया। जो निरञ्जन का अंश कहलाया अथवा जीवात्मा कहलाया। इस तरह हँस को माया के बँधन में फँसाया गया है। मन रूप निरञ्जन इसमें नहीं मिलता तो हँस कभी पिंजरे में कैद नहीं होना था। शरीर रूप पिंजरे में अगर हँस को नहीं रखा जाता तो हँस साहिब के पास चला जाता क्योंकि वह साहिब का अंश है। इसलिए यह शरीर मन रूप निरञ्जन ने ही माया रूप आद्यशक्ति के साथ दिया। इसी परमात्मा ने दिया साहिब के इच्छा के विरुद्ध दिया। साहिब ने तो अपने अंश (हँस) अमरलोक के समान ही मानसरोवर में रखने निरञ्जन के पास आद्यशक्ति के साथ भेजे थे।

निरञ्जन मन+आत्मा+प्राण+जीव साथ रहते हुए भिन्न-भिन्न शरीरों में परिवर्तित होते रहते हैं। यह निश्चित प्रक्रिया है इसी से आधिभौतिक और

आधिदैविक सृष्टि का विस्तार क्रम चलता है। शास्त्र-गुरु इसी में परमात्मा और आध्यात्म मानते हुए मन को ज्ञान का मूल, प्राण को क्रिया का मूल और अर्थ (Matter) का मूल वाक् को कहते हैं। यही शास्त्र-गुरु प्राणवान् पदार्थों को 'सत्' कहते हैं और भिन्न-भिन्न प्राणों के स्वरूप (सामूहिक) को देव बताते हैं।

संतों ने कहा जो आत्मा से चेतन सत्ता होकर अपने निज सत्यलोक पहुँचती है उसकी संज्ञा — 'हँस' है। सद्गुरु कृपा से चेतन सत्ता हँस होकर सत्यपुरुष में समाती है और जब उसी का रूप होकर त्रिलोक में वापस आती है तो उसकी संज्ञा है — परमहँस या सद्गुरु। निरञ्जन को परमात्मा मानने वाले शास्त्र-गुरु एक ही श्रेणी के प्राण-समूह को 'ऋषि' कहते हैं। संत-सद्गुरु ने जीव शरीर में 10 प्राणों का वर्णन किया है जबकि शास्त्र-गुरु सात-प्राणों के एक समूह में प्राण का कार्य करना बताते हैं। इनके अनुसार 'पंच कोष' सिद्धान्त शरीर से आत्मा तक का विवेचन करता है जिसे 'पञ्च गुहा' कहा है। शरीर में चार गुहाएँ हैं, हर एक गुहा में सात-प्राण सात-अवयवों में कार्य करते हैं। तीन-युगल (संयुक्त) रूप में कुल छः (इनमें भी एक युगल ऋणात्मक और धनात्मक होता है) एवं सातवाँ मुख-प्राण अकेला। इनमें (1) सिरोगुहा (सिर), में दो-कान, दो-आँखें, दो-नाक मिलकर कुल छः प्राणों के स्थान हैं, सातवाँ 'मुख' अकेला है। अर्थात् कान-आँखें-नाक इन्द्रियों को सातवाँ मुखप्राण शक्ति देता है जो 'इन्द्र' कहलाता है। संतों ने 'मुख' को भी इन्द्री कहा है। (2) दूसरी 'उरोगुहा' में दो-हाथ, दो फेफड़े और दो-स्तन युगल रूप में और सातवाँ हृदय अकेला अवयव है। (3) तीसरी 'उदर गुहा' में यकृत-प्लीहा एक युगल, अमाशय और पक्वाशय युग्म और दो वृक्क (किडनी) मिलकर छः और सातवाँ प्राण नाभि में स्थित है। इनका केन्द्रीय प्राण भी उरोगुहा का 'हृदय' है। ये अन्न के ग्रहण और विभाजन की शक्ति देता है। (4) चौथी 'वास्तिगुहा' में दो-पैर, मूत्र व वीर्य निकलने के दो छिद्र, दो-

अण्डकोष और सातवाँ ‘गुदा’। इनका शक्ति केन्द्र अथवा इन्द्रप्राण उदरगुहा की ‘नाभि’ में स्थित है। वस्तिगुहा शरीर निर्वाह के लिए विसर्जन अथवा उत्सर्ग को शक्ति देता है।

शास्त्रगुरु काल निरञ्जन के बनाये इस शरीर के प्राणों का चिकित्सीय विज्ञान जैसा वर्णन करते हुए शरीर को भी चार वर्णीय व्यवस्था की श्रेणियों में बाँटा होना कहते हैं। अर्थात् ‘शिरोगुहा’ ज्ञान-शक्ति प्रधान ‘ब्रह्मण’ है। उरोगुहा पराक्रमशक्ति युक्त ‘क्षत्रिय’ है। उदरगुहा-संग्रह और विभाजन शक्ति सम्पन्न ‘वैश्य’ है। वास्तिगुहा सेवा और कला शक्ति युक्त ‘शूद्र’ है। इनके अनुसार शरीर के हर अवयव में भिन्न-भिन्न प्राण प्रतिष्ठित हैं जिनके स्वरूप और कार्य भी भिन्न होते हैं। मन भारद्वाज रूप ऋषि है जो अन्न (वाज) बनाता है अर्थात् वाज से भरण करने वाला भारद्वाज कहलाता है। नेत्रों को जमद्गनि कहा गया जिससे जगत् को देखा-पहचाना जाए और प्रकाशशील होने के कारण जो अग्नि भी हो। विश्वामित्र बनाने वाला ‘कान’ विश्वामित्र ऋषि है। वाक् से जगत् बनता है अर्थात् विश्व है कर्म जिसका वह विश्वकर्मा कहा जाता है। शरीर में मुख्य रूप से जो प्राण कार्य करते हैं उन्हें ऋषि, पित्र, देव या असुर प्राण कहते हैं। इनको आगे आठ वसु, ग्यारह रुद्र, और बारह आदित्य में बाँटा गया है। इनके साथ एक इन्द्र और एक प्रजापति मिलकर तैंतीस देवता (प्राण) बनते हैं। इन्हीं के विस्तार को तैंतीस करोड़ देवता माना गया है।

शास्त्र-ज्ञान की उपरोक्त व्यवस्था और शरीर विज्ञान को संतों ने निरञ्जन की माया कहा है। यही निरञ्जन की जीव-सृष्टि है जो अज्ञानमय है। सत्य और अमरलोक के विपरीत है। इसी व्यवस्था से मन रूप निरञ्जन स्वयं प्राण है उसी को शास्त्रगुरु परमात्मा मान रहे हैं। सत्य अमरलोक तो विस्तार या संकुचन, रचना और विनाश से परे है नित्य है। मन रूप निरञ्जन का त्रिलोक विस्तार और विनाश की सतत् प्रक्रिया में रहता है। निरञ्जन के जीव-प्राण खेल का यही भेद विशेष रूप से साहिब ने और संतों ने जगत् को बताया है। साहिब ने कहा —

संतों सबका साक्षी मेरा साँई ।
ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर¹ ले² सब जग प्रगटाई ॥

[1. ईश्वर=ब्रह्म, 2. ले=तक]

अर्थात् - ये सब परमात्मा इस जगत् के कर्ता और इस जगत् में ही प्रकट होने वाले हैं ।

सत्यलोक के परमपुरुष को सृष्टि, मन, आत्मा, प्राण, जीव और सृष्टि क्रम के विस्तार-संकुचन-विनाश से कोई सम्बन्ध नहीं है । परमपुरुष तो अपने बिछुड़े हँसों को इस निरञ्जन सृष्टि से मुक्त कराने ही सद्गुरु को भेजते हैं ।

इसीलिए संत दादू दयाल जी ने कबीर साहिब की स्तुति करते हुए कहा —

दादू नाम कबीर का, जो कोई लेवे ओट ।

उसको कबहुँ न लागती, काल पुरुष की चोट ॥

जो सद्गुरु की ओट (आड़) में, शरण में आ जाता है फिर उसे कभी कालपुरुष नहीं सता सकता । सद्गुरु भक्त होकर निरञ्जन की सृष्टि से सदैव के लिए मुक्त होकर सत्यपुरुष लोक के आनन्द में समा जाता है ।

उच्च कोटि के संत दादू दयाल जी, महाकवि जायसी आदि सुन्दर-सुडोल-रूपवान नहीं थे पर सच्चे परमात्म पुरुष थे । दुनिया के लोग हृष्ट-पुष्ट-सुडोल, भौतिक साधनों के वैभव से सम्पन्न गुरुओं को महात्मा-आध्यात्म ज्ञानी समझ कर आकर्षित होते हैं । ऐसे गुरु अपना प्रचार भी बड़े नाटकीय तरीकों से करते हैं जिससे धर्म के नाम पर लाखों लोग उनके पास पहुँच जाते हैं । शास्त्रों के शब्द विश्लेषण की कला, वाक्पटुता से अवतारों की चरित्र कथाओं का बखान करने वालों को लोग धर्म का ज्ञाता मानकर पूजने लगते हैं । सत्य और आत्मज्ञान-धर्म से संसार के लोगों को दूर करने काल निरञ्जन ने भिन्न-भिन्न प्रकार के धर्म मतों और धर्मस्थानों का जाल फैलाया है । सामान्यजन इस भ्रमजाल में समझ ही नहीं पाता कि धर्म में

सत्य क्या है। सब तरफ काल निरञ्जन सृष्टि के मायाजाल की कल्पना ही जीवों का भगवान है। जिसे सच्चा-समर्थ गुरु मिल गया उसे गुरु में ही परमात्म दिखेगा। गुरु चरणदास की शिष्या सहजोबाई ने बड़े सुन्दर तर्क से इस मन रूपी हरि भगवान को नकार दिया। संत सहजोबाई विनती करते हुए गाती हैं —

हरि को तजुँ गुरु को न बिसारूँ। गुरु के सम हरि को न निहारूँ ॥
 हरि ने जन्म दियो जग माहीं। गुरु ने आवागमन छुड़ाई ॥
 हरि ने पाँच चोर दिये साथ। गुरु ने लई छुड़ाय अनाथा ॥
 हरि ने कुटुम्ब जाल में घेरी। गुरु ने काटी ममता बैरी ॥
 हरि ने रोग भोग उरझायो। गुरु जोगी कर सबै छुडायो ॥
 हरि ने कर्म भर्म भरमायो। गुरु ने आत्म रूप लखायो ॥
 हरि ने मोसे आप छिपायो। गुरु दीपक दे ताहि दिखायो ॥
 चरनदास पर तन मन वारूँ। गुरु न तजुँ हरि को तजि डारूँ ॥

कितनी बड़ी और सटीक कही भक्त सहजो ने कि जिस परमात्मा हरि को देखा ही नहीं उसे छोड़ दूँगी पर गुरु को पल भर नहीं भूलूँगी। इतना ही नहीं, हरि यदि मिल भी जायें तो गुरु समकक्ष हरि को नहीं निहारूँगी। सहजो बाई तर्क देती हैं — कि हरि ने भले ही जगत् में जन्म दिया हो लेकिन संसार के जन्म-मरण क्रम से गुरु ने ही मुक्ति दिलाई। जिस परमात्मा ने जन्म दिया उसने काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार रूपी पाँच चोर भी साथ लगा दिये। ऐसे हरि द्वारा ठगी गई अनाथ आत्मा को गुरु ने ही छुड़ाया। पाँच महाशत्रुओं के साथ ही परमात्मा ने जात-वर्ण-कुल के कुटुम्ब जाल में भी घेर कर रखा और इस शत्रु-ममता को गुरु ने ही काटा। फिर हरि ने तो आत्मा को जीवन के रोग और भोग में उलझाया जिनसे प्रत्यक्ष गुरु ने ही सबको विमुक्त किया। इतना ही नहीं उस परमात्मा ने तो कर्मों और भ्रमों के बँधनों में जीव को भरमाया है; गुरु ने ही उन भ्रमों से निकाल कर आत्म-रूप दिखाया। इस तरह जीवों को संकट में डालकर

निरञ्जन-हरि स्वयं तो अलोप होकर छिप गए वो तो गुरु ही हैं जिन्होंने आत्मज्ञान का दीपक देकर मुझे सब दिखा दिया। फिर सहजो कहती हैं — ऐसे सद्गुरु चरणदास पर ही तन-मन न्यौछावर कर दूँगी और हरि को तज दूँगी पर गुरु को नहीं तजूँगी।

भार्य्यों! निरञ्जन का परिचय सद्गुरु भक्तों ने ही पाया क्योंकि वे शास्त्रों की भाषा-शब्द ज्ञान की व्याख्याओं में नहीं उलझते। सत्य-ज्ञान तो शब्दाक्षर के शास्त्रों से परे हैं और सीधा-सरल समर्पित होने वाला भाव है।

कबीर साहिब की वाणी है कि — मन ही निरञ्जन है, निराकार है, इसी कारण वही हमारे अन्दर देव-स्वरूप है। यही युगों-युगों से भटकाता आ रहा है। काल-निरञ्जन ने स्वयं मन रूप समाकर पाँच-तत्व, पच्चीस प्रकृति और तीन गुणों का जीव शरीर पिंजड़ा बनाया है, जिसमें आत्मा को कैद करके भ्रम में डाल रखा है।

मन ही सरूपी देव निरञ्जन, तोहि रहा भरमाई।

पाँच पच्चीस तीन को पिंजड़ा, जामे तोहि राखा भरमाई॥

संत दादू दयाल जी ने कहा कि इस संसार में पग-पग पर हर जगह काल ने अपना जाल बिछाया हुआ है। वो तो प्रत्येक जीव और मनुष्य के सिर पर निशाना साधे खड़ा है। फिर भी इस संसार के मनुष्य अन्धे की भाँति इस बात से बिल्कुल बेपरवाह हैं, अब तक चेत नहीं रहे हैं।

जहँ जहँ दादू पग धरै, तहाँ काल का फँद।

सिर ऊपर साधे खड़ा, अजहुँ न चेतै अँध॥

साहिब ने चेताया है कि मन (निरञ्जन) ने ही भिन्न-भिन्न अवतार लेकर सुर, नर, मुनि सबको ठगा है। जो इससे बच सका वही तीन लोकों से छूटकर न्यारा (मुक्त) हुआ है। अमरलोक के मानसरोवर से निष्कासित निरञ्जन ही तीन लोकों का परमात्मा काल-निरञ्जन बना। हँस से आत्मा और आत्मा से जीव बनाकर मन रूप प्राण बनने निरञ्जन ने ही पाप-पुण्य रचा है। पाप-पुण्य रचकर जीव को फँसाया है।

पाप पुण्य रचि जीव फँसाया । जो जस करै सौ तस फल पाया ॥

करै पाप तेहि नरक भुगताई । करै पुण्य तेहि स्वर्ग पठाई ॥

कर्मनुसार फल विधान बनाकर पाप कर्म करने पर जीव को नरक भुगतना है और पुण्य कर्मों से स्वर्ग दिया जाता है। कर्मों का फल भोगने के लिए जीव बार-बार गर्भ में आता है। इसी तरह काल जीव को चिरकाल से फँसाता आ रहा है।

कर्महि भुगति गरभ में जावै । यहि विधि काल जीव फँदावै ॥

यह स्वर्ग और नरक का खेल बड़ा प्यारा है। नरक के भय से मनुष्य पाप कर्म नहीं करता और स्वर्ग के लोभ से शुभ कर्मों के जाल में फँस जाता है। अब जो पाप नहीं कर रहा वो अच्छा तो है, पर वो भी कर्मों के जाल में फँसकर अपने सही लक्ष्य से मुक्ति से वंचित रह जाता है। स्वर्ग हमारी आत्मा का लक्ष्य नहीं है।

द्वापर में महाभारत-युद्ध समाप्त हुआ तो वासुदेव कृष्ण ने पाण्डवों से कहा कि आपने गोत्र-वध और महापुरुषों का वध किया है, इसलिए अब अधोगति से बचने के लिए यज्ञ करो। युधिष्ठिर ने कहा कि प्रभु आपने ही तो युद्ध करने का उपदेश देते हुए कहा कि युद्ध के कारण और कर्ता आप ही हैं। हमें तो निमित्त मात्र बताया। श्रीकृष्ण ने कहा हे युधिष्ठिर! वो तब तुम्हारा कर्म था- कर्तव्य था; पर गोत्र-वध पाप है, इसलिए 'यज्ञ' आवश्यक है। घोर नरक से बचने और अंशतः कर्मफल पाने यज्ञ करो।

इस तरह तीन-लोको के काल निरञ्जन विधान में स्वर्ग-नरक के फल समय अवधि के लिए है। पाप कर्मों के फलस्वरूप जितने पाप किये उतनी अवधि के नरक की यात्रा मिलती है। फिर जितने पुण्य किये उतनी समय अवधि का स्वर्ग मिलता है। पुनः-पुनः मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ता है। अन्तर इतना होता है कि नरक की यातना भोगने के बाद चौरासी लाख योनियों में महाकष्टकारक यातना भी मिलती है। जबकि, स्वर्ग के सुख के बाद आत्म-कल्याण के अवसर हेतु मनुष्य-तन मिलता है। अब सोचें, मनुष्य-

तन पाकर ही तो हमने स्वर्ग के लोभ में पुण्य-कर्म किये थे और फिर कर्मबन्धन में ही हैं। जन्म लेना ही तो बहुत बड़ा कष्ट है। माँ का गर्भ नरक ही है, कष्टदायक है, मल-मूत्र का स्थान है। हमें इसी से तो छूटना है। सब कहते हैं भवसागर से छूट जायें पर शुभ कर्मों के बाद भी किसी न किसी स्वर्ग तक ही जा पा रहे हैं। माजरा क्या है, आखिर।

वास्तव में हमारा लक्ष्य अमरलोक होना चाहिये वो ही हँसात्मा का मूल स्थान है। वहाँ जाने के बाद फिर गर्भ में आना नहीं होता। जिसे सच्चे सद्गुरु मिल जाते हैं और वो उनकी सेवा भक्ति में लग गया तो समझो निश्चय ही अमरलोक पहुँचेगा। दुनिया के लोग बस यही भूल करते हैं, पुण्य तो करते हैं पर सद्गुरु शरण में नहीं जाते। या तो गुरु करते ही नहीं और यदि करते हैं तो कोई साधारण गुरु भौतिक सुखों के लिए करते हैं। यही भूल है, बहुत बड़ी भूल। याद रहे, मानव-तन पाकर यह भूल नहीं करना है। सच्चे पूर्ण गुरु की तलाश के बिना मानव-चोला बेकार मत करो।

अलख-निरञ्जन योग ध्यान और भक्ति से योगियों, ऋषियों तथा देव-अवतारों को भिन्न-भिन्न सिद्धियों, निधियों के ऐश्वर्य एवं विभूतियाँ प्राप्त होती हैं।

अष्ट-सिद्धियाँ — अणिमा, लघिमा, गरिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व हैं।

नौ-निधियाँ — पदम, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कन्द, नील और सर्ब हैं।

इन्हीं अष्ट सिद्धियों-नौ निधियों के ऐश्वर्य से युक्त मुख्य अवतारों को छः विभूतियाँ अर्थात् ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, भगवान कहा गया है। इसप्रकार '**षडैश्वर्य-सम्पन्न**' ईश्वर (ब्रह्म) ही सगुण रूप में '**भगवान**' कहा जाता है। यही अदृश्य शक्तियाँ निरञ्जन की सृष्टि संचालन की व्यवस्था है जिनसे समस्त प्रकृति और जीव अभिभूत हैं। इनमें से कोई एक या एक से अधिक शक्ति किसी योगी-तपस्वी भक्त को मिल जाने पर

उसमें चमत्कारिक आभा और क्रियायें उत्पन्न हो जाती हैं। संसार के लोग ऐसी ही चमत्कारिक क्रियायों को देखकर इन्हीं को मुक्ति दाता मानकर पूर्ण विश्वास से इनकी भक्ति करने लगते हैं। इन्हीं चमत्कारिक क्रियायों को तत्वों की रसायन क्रिया से करके छल-कपट-ठगी करने वाले भी बाबा-ओझा-जानियाँ बनकर आमजन को बड़ी संख्या में ठगते रहते हैं। **निरञ्जन के इसी भ्रमजाल के कारण दुनिया के लोग सत्यमोक्ष भक्ति से दूर हैं।**

इसी निराकार मन की विभूतियों से विभूषित अवतारी महापुरुषों के कारण भिन्न-भिन्न धर्म, उनके प्रवर्तक और मतों पर आधारित ग्रन्थ बने। जैसे—

1. यहूदी धर्म का तौरैत ग्रंथ।
2. बौद्ध धर्म का त्रिपिटिक ग्रंथ।
3. जैन धर्म का आगम ग्रंथ।
4. ईसाई धर्म का बाइबल।
5. इस्लाम धर्म का कुरान।
6. सिक्ख धर्म का आदि ग्रंथ।
7. पारसी धर्म का जेन्द अवेस्ता ग्रंथ।
8. हिन्दू धर्म श्रुत-आधारित, ग्रंथ श्रुति -वेद।

फिर हर धर्म में पश्चातवर्ती महापुरुषों के कारण मत भिन्नताओं पर आधारित ग्रंथों के अनुयायी पंथ बन गए। चार वेदों को न मानने वाले भारतीय धर्म-चार्वाक, बौद्ध, जैन और शाक्त हैं फिर उनके भिन्न-भिन्न मतों के अनुयायी।

काल-निरञ्जन के मृत्युलोक में संशय और भ्रम के धर्म सिद्धान्तों के सिवाये जीवों को मोक्ष के सत्य-आध्यात्म का ज्ञान होना संभव नहीं है। इसी संशय और भ्रम को कबीर साहिब ने उजागर करके सत्य-आध्यात्म का ज्ञान दिया। धर्म आडम्बरों से युक्त धर्म-संसार की अँध भक्ति को उजागर करते हुए साहिब की वाणी है —

तीरथ गये दोऊ जना, चित्त चंचल मन चोर।

एको पाप न काटिया, लादे दस मन और॥

अर्थात् - चित्त की चंचलता लिये चोर-मन के साथ ही हर व्यक्ति (दो रूपों में) तीर्थ धर्म की कमाई को जाता रहा है। इससे किसी का पाप तो एक भी कम नहीं होता अपितु मन के साथ दस गुने पाप और लाद लाते हैं।

काया से तीन पाप :: चोरी, हिंसा, व्याभिचार,

वचन से तीन पाप :: गाली, निन्दा, झूठ, और

मन से चार पाप :: क्रोध, ईर्ष्या, मान, छल।

यही दस मन पाप हैं।

जिस प्रकार पुष्प गंध के लोभ में भँवरा, कमल पुष्प में ही बन्द होकर जान गवाँ देता है, जिह्वा से रस मिलने के लालच में मछली काँटे में फँस कर मरती हैं, हथिनि के काम-स्पर्श के लालच में हाथी फँस जाता है, लौ ज्योति के रूप पर मोहित होकर पतंगा जलकर मर जाता है और शब्द-रस की धुन सुनकर हिरण जाल में फँस जाता है; निरञ्जन ने काम-क्रोध-लोभ, मोह, अहंकार रूपी मन की वृत्तियों की शक्ति से जीवों को कर्मजाल और जन्म-मरण के मायाजाल में बाँधा है।

अलि, मीन, गज, पतंग, मृग जरै एक ही आँच।

तुलसी वे नर कैसे बचिहैं, जिनके लागे पाँच॥



माला लकड़ पूजा पत्थर, तीर्थ है सब पानी।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, चारों वेद कहानी॥

निर्गुण-त्रिगुण रूप 'मन' ही है

मनुष्य ने अपनी भौतिक बुद्धि-विवेक का उपयोग करके बहुत शक्ति बढ़ाई है। इसी रचनात्मक शक्ति और विनाशकारी भौतिक विज्ञान शक्ति के कारण इन्सान अन्य सभी प्राणियों में अनूठा है। सचमुच ही यह नारायणी चोला है। आखिर इस तन को प्राप्त करने के लिए देवता भी आकाँक्षा करते हैं, चाह रखते हैं। इसे दुर्लभ तन ऐसे ही नहीं कहा गया है। मनुष्य के पास अत्यधिक क्षमतायें निरञ्जन की ही देन हैं, उस विधाता की सर्वश्रेष्ठ कृति है। निरञ्जन की ईश्वरीय शक्तियाँ, मनुष्य देह में समाई हैं। भौतिक में भी, भौतिक भाव में भी इन्सान के पास अनूठी शक्तियाँ हैं। अन्य जीवों के क्रियाकलापों व जीवन पर ध्यान दें तो मालूम होता है कि इन्सान के अलावा किसी प्राणी ने कोई रचना नहीं की। आदमी की भौतिक ताकत असाधारण है; ऊँचे विशाल गगनचुम्बी भवन निर्माण, अन्तरिक्ष यान, टेलीविजन, कम्प्यूटर, सेलफोन, टेलीफोन ये हैं सृजनात्मक कृत्य। वहीं अणु बम और युद्धक वायुयान, समुद्री जहाज, पनडुब्बी जैसी विनाशकारी रचनायें। ऐसी भौतिक शक्तियों का असीम खजाना है।

भाइयों! इन्सान के पास दूसरी ताकत है दिव्य शक्तियाँ। निरञ्जन की दिव्य-ईश्वरीय शक्तियाँ भी मनुष्य देह में हैं। दिव्य से तात्पर्य है आन्तरिक शक्तियाँ जिनको बाहरी इन्द्रियों द्वारा अनुभव नहीं किया जा सकता। आदमी के पास निराली दिव्य शक्तियाँ भी हैं, इन शक्तियों से इन्सान बड़े-बड़े काम कर सकता है। आज इन्सान ने भौतिकता में बहुत विकास किया है परन्तु अध्यात्म और योग में पिछड़ गया है। एक समय था जब हमारे देश में शरीर का दिव्य-विज्ञान बुलन्दियों पर था। धृतराष्ट्र को हस्तिनापुर अर्थात् दिल्ली में बैठे रहकर संजय ने महाभारत कुरुक्षेत्र युद्ध का हाल बताया था। यह साधारण बात नहीं, न उनके पास कोई टॉवर थे न टेलिविजन थे न ही

कोई नेटवर्क था। फिर भी बहुत सटीक-सुन्दर तरीके से संजय ने हस्तिनापुर में बैठकर कुरुक्षेत्र का पूरा हाल बताया था। आप सोचें, उस समय हमारे देश में दिव्य ज्ञान और आन्तरिक विज्ञान कितनी तरक्की पर था।

आइए, देखते हैं ये दिव्य शक्तियाँ क्या हैं। ये दिव्य शक्तियाँ कुछ चुनिंदा लोगों के पास ही नहीं हरेक इन्सान के भीतर हैं। इन दिव्य शक्तियों का पुञ्ज हरेक काया के अन्दर है, फिर इन्सान को पता क्यों नहीं चल रहा है। ये शक्तियाँ आसानी से नहीं मिलती हैं। जब हम अन्दर की दिव्य कोशिकाओं को जगा देंगे तो उन दिव्य शक्तियों का आभाष निरञ्जन-मन ही करा देगा। देह की विशेष कोशिकाओं की दिव्य-शक्तियाँ जाग्रत होने से मनुष्य तीनों-काल (भूत-वर्तमान-भविष्य) को देख सकता है, समझ सकता है। दुनिया और सृष्टि में कहीं भी हो रही घटनाओं को दिव्य शक्तियों से देख सकते हैं आदमी के भीतर की ये शक्तियाँ जग जायें तो वह ब्रह्माण्ड की यात्रा भी कर सकता है। इन शक्तियों को निरंकार-मन की सत्-रज-तम त्रिगुणी भक्ति तप-योग ध्यान से पाया जा सकता है।

जो कुछ भी तीन लोकों में है वही मनुष्य के शरीर में है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड की रचना एक जैसी है। तीनों लोक पाँच तत्वों से बने हैं, शरीर भी पाँच तत्वों से बना है। ब्रह्माण्ड नाशवान है, यह शरीर भी नाशवान है। केवल 'आत्मा' जो निराकार हुए निरञ्जन द्वारा वश में करके जीव-शरीरों के बँधन में बाँधी गई है तत्वों से परे है, अमर है। परमपुरुष अंश हँसात्मा की अजर-अमर शक्ति से जीव-शरीरों पर राज करने ही काल-निरञ्जन सृष्टि का सृजन और विनाश करने सदैव व्यस्त है।

चौदह लोक इसी शरीर में हैं। पैर के तलुवों से जंघाओं तक सात पाताल लोक (1) अतल, (2) वितल, (3) सुतल, (4) तलातल, (5) महातल, (6) रसातल और (7) पाताल हैं। इसके ऊपर सात लोक (1) मूलाधार चक्र [गुदा स्थान] 'पृथ्वी तत्व' [यहाँ गणेश जी का वास है] 'सत्-शब्द' से पैदा हुआ है। (2) स्वादिष्ठान चक्र [ब्रह्म लोक] लिंग

इन्द्रिय [यहाँ ब्रह्मा और सावित्री का वास है] यहाँ से सम्पूर्ण मैथुन सृष्टि का संचालन होता है। यहाँ जल तत्व है, जो, 'ओंकार' से पैदा हुआ। (3) 'नाभि स्थान' - विष्णु जी और लक्ष्मी जी का वास है जो सृष्टि के संचालक हैं। यही विष्णु लोक है; यहाँ वायु-तत्व है जो 'सोहं' शब्द से पैदा हुआ। (4) 'हृदय स्थान' में शिव और पार्वती का वास है, यही शिवलोक कहलाता है। 70 प्रकार की अनहद धुनें यहाँ उठती हैं। यहाँ अग्नि-तत्व है जो ज्योति-निरञ्जन (अलख निरञ्जन) शब्द से पैदा हुआ। (5) कण्ठ चक्र यहाँ आद्यशक्ति का वास है। (6) नेत्रों के ऊपर भौंहों के बीच 'आज्ञा चक्र' दो दल कमल यहाँ आत्मा का वास है। और (7) सहस्रसार चक्र या निरञ्जन लोक स्त्रियों की माँग का प्रारम्भ सिन्दुर स्थान है। पाँचवाँ आकाश-तत्व जो रंकार-शब्द से पैदा हुआ, यह शरीर में मन-रूप में समाया हुआ है।

सहस्रसार से आगे कालपुरुष, निरंकार, निरञ्जन अथवा मन के सात लोकों अर्थात् महाआकाशों की भूल-भुलैया का आरम्भ होता है। इन्हें निरञ्जन के ही सातलोक संत मत में कहा गया है। इस प्रकार सहस्रसार अर्थात् आकाश तत्व से आगे सात-लोक— (1) अचिंत लोक, (2) सोहंग लोक, (3) मूल सुरति लोक, (4) अंकुर लोक, (5) इच्छा लोक, (6) वाणी लोक और (7) सहज लोक हैं।

ब्रह्माण्ड और मनुष्य देह के 14 लोकों से ऊपर काल-निरञ्जन के महाशून्य (अँधकार) 7 लोकों के पश्चात् परमपुरुष या साहिब का सत्यलोक है। ज्ञानीपुरुष कबीर साहिब ने सातों-महाआकाशों की दूरी की गणना सहित सत्यलोक की दूरी बताई है। इसीलिए साहिब कबीर ने कहा — शून्य से पाँच असंख्य योजन ऊपर - अचिंत लोक, फिर तीन असंख्य योजन ऊपर सोहंग लोक, सोहंग लोक से 5 अंख्य योजन ऊपर सुरति लोक, (चेतना यहीं से आई है) फिर तीन असंख्य योजन ऊपर अंकुर लोक है।

पाँच शब्द और पाँचों मुद्रा, सोई निश्चय कर माना ।

आगे पूरण पुरुष पुरातन, तिसकी खबर न जाना ॥

सिद्ध साधु त्रिदेवादि लै, पाँच शब्द में अटके ।

मुद्रा साध रहे घट भीतर, फिर आँधे मुँह लटके ॥

हमारे पूर्वज; योगी, ऋषि, सन्यासी तथा त्रिदेवों ने भी इन्हीं पाँच मुद्राओं— चाचरी, भूचरी, अगोचरी, उनमुनि और खेचरी मुद्रा में ही पाँच शब्दों को ध्यान का आधार बनाया। वे इनमें से ही किसी एक स्थान के चक्र को जाग्रत करके उसमें ही अंतिम परमात्म दर्शन मानकर मग्न हो गए।

(1) **चाचरी मुद्रा** — चाचरी मुद्रा में आँखों के मध्य तीसरे तिल पर **ज्योति-निरञ्जन** शब्द से ध्यान एकाग्र करने से **अग्नि** तत्त्व उत्पन्न होता है। यह हृदय से ऊपर उठकर ज्योत जागृत करता है। इस प्रकार तेज हो जाता है। इसमें थोड़ा भी ध्यान विचलित होने पर नाभि स्थान में पहुँचकर **वायु तत्त्व** में विलीन हो जाता है। लगातार '**ज्योति निरञ्जन**' नाम का जाप करने से आँखों के मध्य का स्नायु मण्डल जाग्रत हो जाता है। ऐसा साधक त्रिकाल में जो हो चुका वो भी देख सकता है। क्या होने वाला है, इसका ज्ञान भी हो सकता है। साधारण मनुष्य और सन्यासी ऐसे योगी से आँख नहीं मिला सकते।

ज्योति निरञ्जन चाचरी मुद्रा सो है नैनन माहीं।

तेहिं को जाना गोरख जोगी महातेज है ताहीं ॥

चाचरी मुद्रा में ज्योति-निरञ्जन शब्द का जाप करके गुरु गोरखनाथ जी योगेश्वर कहलाये। साहिब कबीर ने कहा कि इस मुद्रा से ध्यान लगाने में शक्तियाँ तो मिल जाएंगी, पर आत्मा का ठौर-ठिकाना नहीं मिलेगा। योगी केवल चमत्कारी ही बन सकेगा। इसलिए शब्द '**ज्योति-निरञ्जन**' और '**चाचरी मुद्रा**' से आत्म-ज्ञान नहीं होगा।

(2) **अगोचरी मुद्रा** — अगोचरी मुद्रा से योगी हृदय स्थान पर

‘सोहंग शब्द’ से ध्यान एकाग्र करते हैं। इससे वायु तत्व उत्पन्न होकर साधक को कुछ दिखाई नहीं देता। केवल शब्दों की अनहद मीठी धुनें सुनता हुआ ध्यान को रोकता है। योगी शब्दों की आनन्दमयी धुनों में मग्न होकर भँवरगुफा में पहुँचकर कुछ सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। भँवरगुफा में 70 प्रकार की आनन्दमयी धुनें हैं। ‘अनहद’ शब्द साधक को बहुत बल प्रदान करते हैं और वह इन्हें ही परमात्मा मान लेता है। कबीर साहिब ने समझाया —

सोहं शब्द अगोचरि मुद्रा, भँवरगुफा अस्थाना।

शुकदेव ताको पहिचाना, सुनी अनहद की ताना॥

अ-गो-च-र अर्थात् जो स्थान इन्द्रियों से न दिखे। सोहं-शब्द और अगोचरी मुद्रा के सबसे महान योगी शुकदेव जी योगेश्वर हुए। अन्दर की इन संगीतमय धुनों को सुनने वाला फिर संसार से दूर ही रहना चाहता है। बाहर का सब संसार अप्रिय लगने लगता है। आन्तरिक धुनों के इस आनन्द को परमात्म एकाकार मानने की भूल इस साधना में ‘मन’ करवाता है। निरञ्जन-मन ही इन धुनों का ईश्वर है। **आत्म साक्षात्कार कोई शब्द मय धुन या संगीत नहीं है।** परमात्म मिलन तो वह है जहाँ सभी जाप समाप्त होकर अजपा और अनहद भी मर जाता है। जब आत्मा परमात्मा से एकाकार होगी तब कोई पृथक् धुन-संगीत का अनुभव नहीं रहेगा।

कबीर साहिब की वाणी है —

जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।

सुरति समानी शब्द में, ताको काल न खाय॥

वायु तत्व सदैव नाभि (पेट) की ओर रहने वाला होता है। अतएव योगी अंत समय तक दसवें द्वार की ओर प्राण वायु को नहीं ले जा पाता। शब्द-धुन स्वयं ही वायु का रूप है, परमात्म सत्य का इससे कुछ सम्बन्ध नहीं है। निरंकार मन ही इन अनहद धुनों का स्वामी है। शिवजी भी, इन्हीं धुनों में चार-युगों तक ध्यान मग्न रहते हैं जो स्वयं योगेश्वर हैं।

(3) **भूचरी मुद्रा** — भूचरी मुद्रा में तीसरे तिल से ऊपर ‘आज्ञा चक्र’ त्रिकुटी पर ध्यान एकाग्र कर ‘ॐ’ ओंकार शब्द का जाप करने से जल तत्व उत्पन्न होता है। इसमें योगी दिव्य-शांति का अनुभव करता है। योगेश्वर व्यासदेव इस मुद्रा में ध्यानस्थ होकर ब्रह्मज्ञानी कहलाये। इस सम्बन्ध में कबीर साहिब ने कहा —

ओम् ओंकार भूचरी मुद्रा, त्रिकुटी है अस्थाना।

व्यास देव ताको पहचाना, चाँद सूर्य से जाना॥

हजारों सूर्य और चन्द्रमाओं के ब्रह्माण्ड भ्रमण जैसा आनन्द पाकर योगेश्वर व्यासदेव ने ‘ओंकार’ को ही परमात्मा जाना। इस मुद्रा और शब्द के अनुयायी इसी कारण ‘ओउम’ को ही सृष्टि का आदि और अन्त मानते हैं। ओंकार की भक्ति त्रिदेवों से ऊपर मानी जाती है। सहस्रसार और नेत्रों के मध्य के इस स्थान की कोशिकायें जाग्रत होने से मोक्ष प्राप्ति सम्भव नहीं है। केवल सृष्टि का ज्ञान ही ‘ओंकार’ में सीमित है। जल तत्व के कारण ब्रह्मलोक का ज्ञान ही इसकी अंतिम सीमा है, अर्थात् मन-रूप निरञ्जन का ही ज्ञान होगा।

(4) **उनमुनि मुद्रा** — चौथी मुद्रा ‘उनमुनि’ में योगी ‘सहस्रसार चक्र’ पर ‘सत्’ शब्द का ध्यान करता है। इससे पृथ्वी-तत्व उत्पन्न होकर एक अद्भुत प्रकाश दिखाई देता है। माताओं के माँग में सिन्दूर लगाने वाले प्रारम्भ स्थान को ‘सहस्रसार चक्र या निरञ्जन लोक’ कहा जाता है। सत्-शब्द से ‘सहस्रसार चक्र’ पर ध्यान एकाग्र कर योगी शरीर से ऊपर उठकर विदेह हो जाता है। सत्-शब्द के इस अद्भुत प्रकाश को ही राजा जनक ने पाकर स्वयं को विदेह जाना। यह सत्यलोक का अद्भुत प्रकाश नहीं अपितु निरञ्जन-लोक है। इसी निरञ्जन-लोक के अधीन ही तो सम्पूर्ण सृष्टि है। इसी कारण विदेह होकर भी शरीर से तार जुड़ा रहता है। केवल तन-मन-धन का लोभ समाप्त होकर ‘मेरा’ होने का भाव समाप्त होता है। लोक-कल्याण के सिवा साधक अपना कुछ नहीं मानता। कबीर साहिब ने

इस सम्बन्ध में कहा है —

सत् शब्द सो उनमुनि मुद्रा, सोई आकाश सनेही ।

तामे झिलमिल ज्योति दिखावे, जाना जनक विदेही ॥

उनमुनि मुद्रा में **सत्-शब्द** ध्यान साधना से चूँकि पृथ्वी तत्व उत्पन्न होता है, इसलिए स्वाभाविक रूप से प्राणवायु का खिंचाव अंत समय तक नीचे नाभि की ओर ही रहेगा। दसवें द्वार तरफ ऊपर जाने के लिए प्रयास नहीं होगा। अतः ग्यारहवें द्वार और सत्यलोक का ज्ञान अनुभव नहीं होगा। केवल निरञ्जन लोक तक के आकाश का ही प्रकाश दिखाई देगा। हाँ, इस ध्यान से प्राप्त आनन्द ऊपर के तीनों प्रकारों से बढ़कर है। इसमें योगी शरीर में रहता हुआ भी शरीर की क्रियाओं में लिप्त नहीं होता। इससे करोड़ों-वर्षों की मुक्ति ही प्राप्त होगी, पुनः संसार में राजा या ऋषि का शरीर सुख मिलेगा। मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। यह योग-भक्ति भी स्वयं की कमाई (साधना) पर निर्भर है। सद्गुरु अंत समय साथ न होने से निरञ्जन लोक से आगे अमरलोक जाना सम्भव नहीं है।

(5) **खेचरी मुद्रा** — पाँचवीं योग मुद्रा '**खेचरी मुद्रा**' में रंकार-शब्द का ध्यान शीश के चोटी वाले स्थान पर किया जाता है। इससे आकाश तत्व उत्पन्न होकर दसवें द्वार अर्थात् सुषुम्ना में पहुँचते हैं। सुषुम्ना नाड़ी से ही निरञ्जन मन रूप में शरीर में समाया है। योगी इसी को सत्यपुरुष मानकर ढूँढते हैं। इस मुद्रा में ध्यान एकाग्र कर योगी दसवें द्वार अर्थात् सुषुम्ना में प्राणवायु ले जाकर अलौकिक सूक्ष्म शरीर प्राप्त कर लेता है। इस सूक्ष्म शरीर से अनन्त ब्रह्माण्डों में योगी घूम कर अलौकिक आनन्द पाता है। इसकी तुलना में अन्य योग मुद्राओं के योगियों का आनन्द कम ही है।

निराकार भक्ति के सभी योगियों का मार्ग समान रूप से असाध्य कठिनाई वाला है। प्रत्येक योग मुद्रा और शब्द जाप में सम्पूर्ण जीवन एकाग्रता सिद्ध करने में लगता है; जबकि मिलने वाले स्वर्गों में मात्र सीमा का अन्तर है।

कबीर साहिब ने वाणी में चेताया है—

ररंकार खेचरी मुद्रा दसवाँ द्वार ठिकाना।

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा, ररंकार पहचाना॥

निरञ्जन स्वयं मन रूप शरीर और सृष्टि में व्याप्त हुआ है। निरञ्जन ने ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश त्रिदेवों को आद्यशक्ति को सौंप कर उन्हें रचियता, पालनकर्ता और संहारकर्ता का गुरुत्व भार सौंपा है। आद्यशक्ति स्वयं माया रूप में त्रिदेवों सहित समस्त जीवों का शरीर है। इसी कारण त्रिदेवों ने ज्ञानी साहिब को सद्गुरु स्वीकार कर परमपुरुष का सत्यनाम नहीं लिया। वे सभी 11वें द्वार से वंचित होकर अमरलोक जाने में असमर्थ और असहाय हैं। जिस प्रकार भोग क्रिया में विषय इन्द्री का आनन्द सबसे बढ़कर होता है; इसी प्रकार योग-ध्यान में दसवें द्वार अर्थात् सुषुम्ना खुलने का आनन्द सबसे बढ़कर है। महेश्वर जो प्रथम योगेश्वर कहलाये सृष्टि के अन्त तक शरीर धारण करने आद्यशक्ति से पाये वरदान के स्वामी हैं। इसी कारण पाँचों वृत्तियों सहित तमोगुण प्रधान होकर अपने भक्तों के ओघड़दानी भोलेनाथ हैं। सृष्टि के इसी लोभ-मोह के वशीभूत हो शिवजी ने साहिब से सत्यनाम नहीं लिया, बस सदा वरदानी और प्रलयंकारी हैं।

एक संत के आनन्द में और ऋषि-योगियों के आनन्द में जमीन आसमान का अन्तर है। योगी स्वर्ग-बैकुण्ठ धामों के लाखों-करोड़ों वर्षों की अवधि के आनन्द का भागी होता है। संत मार्ग का आनन्द सदा अखण्डनीय मोक्षधाम के लिए है। योगियों का सारा आनन्द शरीर की सूक्ष्म कोशिकाओं के जागरण से होता है जिनमें सुषुम्ना नाड़ी का आनन्द सबसे बढ़कर है। ध्यान देने योग्य बात यह है ये सब निराकार-मन (निरञ्जन) की भक्ति तो है किन्तु कर्मबन्धनों से मुक्ति नहीं है, कर्म ही है। कर्म की कमाई है जिसका उच्च से उच्चतम फल निर्धारित है। सद्गुरु भक्ति में कोशिकाओं और सुषुम्ना नाड़ी को जाग्रत करने की कठिनतम कमाई नहीं करना होता है। सद्गुरु से नाम दीक्षा और सद्गुरु में विश्वास व समर्पण ही 11वें द्वार के पार मोक्षधाम जाने की ग्यारन्टी है।

योगियों और ऋषियों को उनके सीमायुक्त आनन्द से अवगत होकर संत-सम्राट कबीर साहिब ने कहा है कि — जिस दिन तुम्हारा वह सूक्ष्म शरीर नष्ट हो जाएगा, उस दिन तुम्हारी सुषुम्ना नाड़ी भी समाप्त हो जाएगी। तब तुम अपने ध्यान को किस स्थान पर रोकोगे। वाणी है —

सिद्ध साधु त्रिदेव आदि लै, पाँच शब्द में अटके।

मुद्रा साध रहे घट भीतर, फिर औंधे मुँह लटके।।

जिस प्रकार साकार भक्ति में कोई विरला ही भक्त ईष्ट की मूर्ति के स्वरूप को स्वयं में विलीन करता है। अथवा ईष्ट की मूर्ति के स्वरूप में स्वयं लीन होकर अनुभव कर पाता है। उसी प्रकार निराकार भक्ति में योगी, सिद्ध, साधु और त्रिदेव आदि किसी एक मुद्रा और किसी एक शब्द नाम का ध्यान ही स्थाई भाव से कर पाते हैं। जन्म-जन्म के इस स्थाई-भाव से शरीर की कोई एक कोशिका और अधिकतम स्थिति सुषुम्ना जागरण तक की होती है। ये दोनों ही प्रकार सभी साधारण मनुष्यों को भक्ति-कमाई (साधना) हेतु सम्भव नहीं हैं। शीघ्र मनोकामनाओं को पूरी करने की कथाओं-व्याख्यानों के शास्त्रों का भण्डार भी साकार-निराकार भक्तियों का है। आमजन इनके ऊपरी दिखावों और प्रलोभन में सर्वसुलभ जानकर अधिकतम संख्या में आकर्षित हैं। सद्गुरु की खोज और कर्मकाण्ड रहित भक्ति के गुप्त सत्यनाम की दीक्षा ज्ञानी-पण्डितजन मनुष्यों को जानने ही नहीं देते हैं। यही संसार के लिए निरञ्जन मन की लीला और विधान है।

मन-रूप निराकार-निरञ्जन जो तीन लोकों की सृष्टि का रचियता है, मालिक है, वही देवों की अधीनता, प्रार्थना, निवेदन, तर्क, क्षमा, दान, यज्ञ, तीर्थ, व्रत, पूजा आदि कर्म कराता है। वही दुराचरण, चरित्रहीनता, हिंसा, चोरी, बेईमानी के पाप कर्म कराता है। वही कर्मबन्धन, कर्मफल और स्वर्ग-नर्क का विधानकर्ता है। सत्यालोक जो स्वयं परमपुरुष का ही रूप है, मोक्षधाम है अपनी ही अंश हँसात्मा को क्यों ऐसे कर्म विधान में बाँधेगा। संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी, मनुष्य सरल और निर्लिप्त रूप से

विचार करे कि परमात्म अंश आत्मा क्यों शरीरों के कर्मबन्धन में हैं ? क्यों सदैव असंतुष्ट और असंतोषी है ? क्यों मन के वश में मनोकामनाओं और भौतिक सुख-दुःख में लिप्त है ?

अच्छे कर्म और बुरे कर्म, उनके स्वर्ग-नरक के फल तीन लोकों तक सीमित हैं। इन कर्मफलों के लिये भिन्न कर्म और अलग-अलग भक्ति, अलग-अलग पंथों की रचना तीन लोकों के मन रूप स्वामी की ही लीला है। इन्हीं लीलाओं के लिए नाना अवतारों का विधान निरञ्जन ने बनाया है। सत्यपुरुष ने तो सत्यलोक के ही मानसरोवर में अलग रचना का वरदान निरञ्जन को उसके युगों-युगों के ध्यान से प्रसन्न होकर दिया था। हँसात्माओं को वहीं अक्षय सुख में रखने के लिए दिया था। निरञ्जन ने छल करके हठधर्मिता से तीन लोकों का पृथक् निर्माण कर लिया और काल-निरञ्जन कहलाया। इसीलिए साहिब कबीर ने आत्मज्ञान के लिये चेताया —

मन ही निरञ्जन काल कराला, जीव रहा भरमाय।

हे हँसा तू अमरलोक का, पड़ा काल वश आय।।

मनुष्य सदा इच्छाओं और असंतोष में ही जीता है; इसका मूल कारण शरीर के बँधन में विवश आत्मा का अमरलोक वाला अनश्वर आनन्दमय स्वभाव है। हँसात्मा को उसका मूल स्थान और मूल स्वरूप देने परमपुरुष ने प्रत्येक युग में हर समय ज्ञान रूप कबीर साहिब को भेजा है। एकमात्र सद्गुरु ही जीवात्मा को सृष्टि के भँवरजाल से मुक्त कराने में समर्थ है। सद्गुरु को मनुष्य पहचान न सके इसके लिए उन जैसे लाखों धर्मगुरु कालपुरुष ने पृथ्वी पर बना दिये हैं। नाना प्रकार के प्रलोभन युक्त धर्म और स्थान संसार में निर्मित कर दिये। वाणी है —

निर्गुण नाम निरञ्जन गाई, जिन सारी उत्पत्ती बनाई।।

निर्गुण जो भया आकाशा, तासे तीनों गुण विस्तारा।।

निर्गुण से मन भयो प्रचण्डा, ताको वासल सकल ब्रह्मण्डा।।

तीन गुण और निराकार रूप में 'मन' इन्सान को चार अवस्थाओं और

छः योग शरीरों में रखता है। इन्हीं अवस्थाओं में रखकर बँधन युक्त आत्मा को यह विश्वास दिलाता है कि निरञ्जन के लोकों के अलावा अन्य कोई परमलोक नहीं है। शरीरों की इन स्थूल व सूक्ष्म अवस्थाओं में बारम्बार आवागमन करने से आत्मा ने भी निरञ्जन के तीनों लोकों को ही अपना घर मान लिया है।

मनुष्य चार मूल अवस्थाओं में जीता है — जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति और तुरिया अवस्था। अन्य जीवों में ये चार अवस्थायें नहीं हैं।

जाग्रत अवस्था - प्रथम है जाग्रत अवस्था जिसमें आत्मा का वास आँखों में होता है, 'जाग्रत में चक्षु में वासा'। संतों का मानना है कि यह अवस्था बड़ी अज्ञानमय है। इसमें प्राप्त होने वाली वस्तुयें भी धोखा हैं। इस अवस्था में आपका ध्यान और सुरति आँखों में होने से इस पंच भौतिक संसार को देखते हैं। इसमें बाह्य इन्द्रियों की कोशिकायें ही क्रियाशील रहती हैं। जैसे हमें स्वप्न में रहते हुए होने वाली सब चीजें व क्रियायें सच लगती हैं और जागने पर सब समाप्त हो जाती हैं। इसी तरह जाग्रत अवस्था में होने वाली सब क्रियायें और चीजें भी धोखा हैं केवल मूर्खता समाई है। हम कई बार ऐसे मूर्खतापूर्ण विचारों से घिरे रहते हैं और ऐसे कार्य कर डालते हैं कि बाद में पछताना पड़ता है। फिर कहते हैं - यह क्या किया! अच्छा नहीं किया, ठीक नहीं किया।

यदि सपना हमसे 4-5 घण्टे का सम्बन्ध रख रहा था तो यह जाग्रत सपना जन्म से मृत्यु तक सम्बन्ध रख रहा है। बड़ी लम्बी आयु भी जीते हैं कुछ लोग। इस अवस्था में माँ-बाप सच लग रहे हैं, भाई-बहन सच लग रहे हैं, बेटा-बेटी, नाती-पोते सच लग रहे हैं, रिश्ते-नाते सब कुछ तो सच-सच लग रहा है। जाग्रत अवस्था में हम इस भ्रमांक संसार को देखते हैं। वास्तविकता यह है कि जो वर्तमान में हमें संसार का अस्तित्व अनुभव हो रहा है यह हमारे चित्त की कल्पना है। नानक देवी जी ने इस अवस्था के बारे में कहा—

ज्यों सपना पेखना, जग रचना तिम जान।

इसमें कछु साँचो नहीं, यह नानक साँची मान॥

इस अवस्था में आत्मा और मन का आधा-आधा जोर चलता है। पाश्चात्य दार्शनिक गेटे ने भी कहा — ‘ये संसार मेरा सृजन है, मैं ही अनुभव करता हूँ, तब संसार का अस्तित्व है; वरना इस संसार का कोई वजूद नहीं है।’ भाईयों, यह जगत आपका चिन्तन है, चेतन अवस्था जिसमें हम इस भौतिक संसार को देख रहे हैं। यह भी स्वप्न ही है अर्थात् भ्रमांक अवस्था है। इसमें जो कुछ भी हम प्राप्त कर रहे हैं, देख रहे हैं, सुख-दुख ये सब भ्रमांक अवस्था है। हमारे मन की कल्पना है, हमारे मन का चिन्तन है जिसके द्वारा हम इस संसार को अनुभव कर रहे हैं। मन आत्म शक्ति को बाँधकर स्वयं उससे काम ले रहा है।

स्वप्न अवस्था - दूसरी स्वप्न अवस्था भी बड़ी अज्ञानमय है। इसमें आत्मा का वास कण्ठ में हो जाता है। यह अवस्था एक धोखा है, इसमें हम कई ऐसे कार्य भी कर डालते हैं जो हम जाग्रत में कभी भी नहीं कर सकते हैं। इसमें प्राप्त होने वाली वस्तुयें और क्रियायें धोखा मात्र हैं। कभी हम स्वप्न में राजा भी बन जाते हैं, कभी भयावह घटनाक्रम में फँस जाते हैं, कभी दम घुटता प्रतीत होता है तो कभी मौज-मस्ती करते हैं। कभी अच्छे तो कभी बुरे दृश्य देखते हैं। इस शरीर के साथ आपको एक और शरीर प्राप्त होता है जिससे सब क्रियायें करते हैं। स्वप्न अवस्था में हमारी आत्मा का निग्रह या वास बाईं तरफ कण्ठ में एक कोशिका में होता है। यह बाईं तरफ की सुरक्षित कण्ठ कोशिका शरीर के रोम से हजारों गुना बारीक है; उसी कोशिका में ध्यान प्रविष्ट हो जाता है। इसी एक नाड़ी में विकार आ जाए तो आदमी स्वप्न नहीं देख सकता। भाईयों, इन्सान अपने जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा स्वप्न अवस्था में व्यतीत करता है। स्वप्न अवस्था में हम सब जिस संसार को देखते हैं वो बड़ा आश्चर्यपूर्ण है, वो भी एक रचना है। जब हम स्वप्न से जाग जाते हैं तो उस संसार का अस्तित्व खत्म हो जाता है। स्वप्न मात्र

कल्पना जैसा लगता है पर सच यह है कि वह भी एक अवस्था है। इस अवस्था में मन 75ल सक्रिय होता है और आत्मा 25ल चेतन होती है। अर्थात् आत्मा की 75ल शक्ति का उपयोग मन करता है।

सुषुप्ति अवस्था - तीसरी अवस्था **सुषुप्ति** है जब हम बहुत गहरी नींद में सो जाते हैं। जागने पर हमें थोड़ी देर कुछ याद नहीं आता कि हम कहाँ हैं, कौन हैं। यह सुषुप्ति अवस्था कहलाती है इसमें आत्मा का वास नाभि में रहता है। यह अवस्था महाअज्ञानमय है। आदमी चाहे तो अपने को पूर्ण विश्राम में ले जाने के लिए नाभि में ध्यान एकाग्र करे। इससे नाभि दल में मुख्य केन्द्र बनता है। ये प्रगाढ़ नींद की अवस्था कभी-कभी स्वाभाविक भी प्राप्त हो जाती है। इस सुषुप्ति अवस्था को घोर निद्रा की अवस्था भी कहते हैं। ऐसी अवस्था जिसमें आपको कुछ याद नहीं रहता है जिस तरह कोई कॉमा में पहुँच जाता है। जागने के बाद आप हैरानगी से उठते हैं; आपका सिर कहाँ है, पैर कहाँ हैं इसका आपको बोध नहीं रहता है। थोड़ी देर जागने के बाद एहसास होता है, तब तक आपकी आत्मा, ध्यान और सुरति उठकर नैत्रों में आ जाती है। तब आपको याद आता है कि आप किस जगह और किस स्थिति में हैं।

जब आप सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त हो जायेंगे तो पूरा सोच-विचार का चिन्तन बन्द हो जाएगा। दिमाग (Brain) को पूर्ण विश्राम मिल जाता है। मेरुदण्ड द्वारा साधक सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त करता है। इसको पूर्ण विश्राम या गहन निद्रा भी कहते हैं। स्वप्न अवस्था में आपका मस्तिष्क, आपके शरीर की कोशिकायें काम करती हैं, स्वप्न में कई घटनायें देखते हैं तो चिन्तन चलता है। सुषुप्ति में चिन्तन नहीं रहता क्योंकि मस्तिष्क व शरीर की कोशिकायें सक्रिय नहीं रहती हैं।

योगी इस सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं, जहाँ कोई दुःख-सुख का आभास नहीं होता। योगी इस सुषुप्ति अवस्था को आनन्दमयी मानते हैं। संतों ने इस अवस्था को अज्ञानमयी कहा है। सुषुप्ति अवस्था में हमारा

मन अत्यन्त कुन्द स्थिति में होता है।

तुरिया अवस्था — चौथी अवस्था तुरिया अवस्था है, इसमें प्राण वायु सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट होती है। सुषुम्ना में प्राण वायु का प्रवेश होने पर मस्तिष्क में पूरा ब्रह्माण्ड दृष्टिगोचर होने लगता है। पूरे ब्रह्माण्ड और तत्त्वों का खेल देह पिण्ड में संसार के पदार्थों सहित महसूस होने लगता है। इस अवस्था में हम आन्तरिक जगत को चैतन्य स्थिति में देखते हैं। इसमें मन की ताकत 25% रह जाती है जबकि आत्मा 75% चैतन्य हो जाती है। इस अवस्था में ऋषि-मुनि तपस्वी पहुँच जाते हैं। अन्य तीन अवस्थाएँ तो स्वाभाविक हैं, आती-जाती रहती हैं, पर तुरिया अवस्था स्वाभाविक नहीं है।

तुरिया अवस्था में पहुँचकर संसार अनित्य और मिथ्या लगने लगता है। तब हमें जाग्रत अवस्था भी भ्रमांक लगती है, कोई अस्तित्व नहीं लगता, सब भ्रम लगता है। देवत्व इसी तुरिया अवस्था में प्राप्त होता है जिसे प्रज्ञा अवस्था कहते हैं। प्रज्ञा अवस्था की ही एक विशेष स्थिति है जिसे महाप्रज्ञा कहते हैं, इसमें जीव परम चैतन्य हो जाता है और कहने लगता है 'अहं ब्रह्मस्मि'। इसे तुरियातीत स्थिति कहते हैं। केवल योगेश्वर इस महाप्रज्ञा अवस्था को प्राप्त होते हैं। त्रिकाल में छः योगेश्वर ही हुए हैं - शिवजी, दत्तात्रय, शुकदेव, व्यासजी, वासुदेव कृष्ण और गोरखनाथ जी। वास्तव में त्रिलोकीय ब्रह्माण्डों का देखना और देह पिण्ड में ही अनुभव होना भी अनित्य मायाजाल के भवसागर का भ्रम ही है।

इन अवस्थाओं के पार जाने पर ही अनश्वर अमरलोक की यात्रा का वर्णन साहिब कबीर और बाद में संतों ने किया है। तुरियातीत अवस्था के पार सद्गुरु कृपा और सत्यनाम प्राप्त करके ही पहुँचा जा सकता है। संत ही इस अवस्था में होते हैं, जिसमें मन पूरी तरह छूट जाता है। साहिब कबीर ने यही समझाया कि मन और माया का त्रिलोकों में विस्तृत भ्रम है, जिसमें बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, सन्यासी, तपस्वी, योगी ही नहीं त्रिदेव आदि

भी फँसे हैं।

तुलसी साहिब (हाथरस वाले) की वाणी है —

खेचरी भूचरि साधे सोई ।
 और अगोचरि उनमुनि जोई ॥
 उनमुनि बसै अकास के माहीं ।
 जोगी बास करे तेहि ठाहीं ॥
 ये जोगी मति कहा पसारा ।
 संत मत पुनि इनसे न्यारा ॥
 जोगी पाँचों मुद्रा साधे ।
 इडा पिंगला सुखमनि बाँधे ॥

साहिब की वाणी है —

सात शून्य सातहि कमल, सात सुरति स्थान ।
 इक्कीस ब्रह्माण्ड लग, काल निरञ्जन ज्ञान ॥
 गुप्त भयो है संग सबके, मन निरञ्जन जानिये ।
 मन ही साकार मन ही, निराकार निरञ्जन जानिये ॥

छः शरीर — योग की पाँचों मुद्राओं मनुष्य जीवन की चार अवस्थाओं और तुरियातीत स्थिति में काल निरञ्जन-मन छः प्रकार के शरीर में क्रियाशील रहता है।

1. प्रथम 'स्थूल शरीर' जो नाशवान है। इसमें पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और चार अन्तःकरण हैं। सभी जीव स्थूल शरीर को धारण करके जीवन क्रियायें कर रहे हैं। इसका परिचय हम सबको है, हम सब इस शरीर में वास कर रहे हैं, इसका हमें अनुभव है। मनुष्य जीवन की अवस्थाओं के साथ ही शरीर की इन्द्रियों में दिव्य योग शक्तियाँ छिपी हैं।
2. दूसरा है 'सूक्ष्म शरीर' जो हमें निद्रा की स्वप्न अवस्था में प्राप्त

होता है। इसको लिंग देही भी कहते हैं। इसी शरीर की अवस्था में 'मन' लोक-लोकान्तर भी दिखाता है। सूक्ष्म शरीर और इसकी क्रियायें बड़ी निराली है। स्वप्न अवस्था में जो कुछ भी आप देखते हैं सब कुछ नित्य लगता है, सच लगता है। इस सूक्ष्म शरीर में जाकर मन आपको एक आश्चर्यजनक सृष्टि में घुमाता है। मनुष्य अपने जीवन का एक-तिहाई भाग नींद में सोकर गुजारता है। सूक्ष्म शरीर में अनूठे स्थानों पर भ्रमण करते हैं, सब सत्य प्रतीत होता है। स्वप्न अवस्था में मिलने वाला सुख-दुःख ठीक वैसा ही होता है जैसे स्थूल शरीर की जाग्रत अवस्था में आभाष होता है।

3. तीसरा है 'कारण शरीर' हरेक मनुष्य में इसका अंश रहता है। अर्थात् आप जाग्रत अवस्था में भी कारण शरीर में प्रवेश कर लेते हैं। उदाहरण के लिए - आप सत्संग में बैठे हैं, मुझे देख रहे हैं और प्रवचन सुन रहे हैं, समझ रहे हैं। यदि आपका ध्यान कुछ देर के लिए कहीं ओर चला जाए, घर-परिवार किसी व्यक्ति और धन्धे पर ध्यान चला जाए तो आप बैठे हुए भी मुझे सुन नहीं पायेंगे, देख नहीं पायेंगे। आप समझ ही नहीं पायेंगे कि मैंने क्या कहा। बस आप आँखें खोले बैठे होंगे। इसका मतलब है हमारे कारण-शरीर से मन हमें कहीं भी ले जाने में सक्षम है। अगर इसका ज्ञान हो जाये तो इस कारण-शरीर को कहीं भी भेजकर वहाँ की पूरी स्थिति और हालात को आप जान-समझ सकते हैं। हम सब इतने अनूठे शरीरों में प्रवेश कर लेते हैं लेकिन उसकी कला पूर्ण रूप से मालूम नहीं है।

वशिष्ट मुनि को इस अन्तर्वाहक शरीर का पूरा ज्ञान था। यह शरीर आपकी काया में है, कारण-शरीर अत्यन्त सूक्ष्म है। हर आदमी इस शरीर का उपयोग कर भी रहा है। इससे कभी-

कभी आप अतीत की बातों में पहुँच जाते हैं, कभी भविष्य की कल्पनायें करके आप कहां पहुँच जाते हैं। कारण शरीर में हमें देखने की शक्ति भी मिलती है।

4. चौथा है **‘महाकारण शरीर’**— यह निराला और अद्भूत शरीर है। इसमें मन पूरी अनुभूतियाँ कराता है। योगी इस शरीर से ब्रह्माण्डों की यात्रायें करते हैं। इसी को तीसरे-तिल में प्रवेश लेना बोलते हैं।

खस-खस के दाने के अन्दर शहर खुदा का बसता है।

बसत करे नैनों के तिल में वहीं उसका रसता है ॥

रूह रकाने में ठहराय सोई बुकुर में धँसता है।

पर बिन मेहर मुर्शिद के तू नाहक में पचता है ॥

इस निराले शरीर में आपको अपने पूरे व्यक्तित्व का पता चलेगा। आपको आभाष होगा **‘मैं हूँ’** मैं देख भी रहा हूँ, मैं सुन भी रहा हूँ, मैं चल भी रहा हूँ, मैं बोल भी रहा हूँ। यह शरीर ऐसा है जैसे दही को मथ कर मक्खन अलग करते हैं। इस देह से योग द्वारा इस शरीर को भिन्न कर देते हैं। इस शरीर में बैठकर पूरा ब्रह्माण्ड पास ही अनुभव होने लगता है।

5. पाँचवाँ है **‘ज्ञान देही’** — इसमें तपस्वी ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है और कहता है **‘अहं ब्रह्मस्मि’**। यथार्थ में एक ब्रह्माण्ड के सृजन करने की शक्ति इस अवस्था में प्राप्त होती है। राजा बलि, विश्वामित्र और वशिष्ठ मुनि के पास इतनी शक्तियाँ थीं कि देवता भी इनसे डरने लगे थे। ज्ञान देही की शक्ति दादूदयाल जी ने अपनी वाणी में कही — **‘सबकी गठरी लाल, कोई नहीं कंगाल।’** ज्ञान देही भी प्रत्येक व्यक्ति के भीतर है। ज्ञानदेही से भी हम तीन लोक तक की यात्रायें कर सकते हैं। शून्य तक के लोकान्तर देख सकते हैं।

जैसे हम मोटर साइकिल, स्कूटर आदि वाहनों से जमीन पर तो दौड़ा सकते हैं पर पानी पर नहीं तैरती हैं। इनमें पानी पर तैरने का सिस्टम नहीं है। इसी तरह स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकरण शरीरों में ज्यादा शक्ति ज्ञान शरीर की प्राप्ति से आ जाती है। इतनी शक्ति आ जाती है कि जो कहें होता जाएगा, जो इच्छा करें होता जाएगा। कल्प-सिद्धियाँ आ जाती हैं। मरण-मारण-सम्मोहन-उच्चाटन-वशीकरण शक्तियाँ आ जाती हैं और अष्ट-सिद्धि, नौ-निद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। ज्ञान शरीर अद्भुत शक्तियों से भरा है।

6. छटवीं हैं 'विज्ञान देही' — यह अत्यंत तीव्र गामी शरीर है। इस शरीर से महाशून्य तक की यात्रा कर सकते हैं। इस शरीर के अन्दर मन अत्यंत गौढ़ रहता है, आत्मा बड़ी चेतन होती है। पर इस स्थिति में भी मन का अस्तित्व होता है, मन रहता है। इस स्थिति में भी व्यक्ति मन से मुक्त नहीं हो पाता है। विज्ञान देही अति सूक्ष्म है जो चट्टान के अन्दर से भी निकल सकती है। इसके विषय में संतों ने वर्णन किया जिनमें कबीर साहिब, गुरुनानक देव प्रमुख हैं।



चिंता तो सत्य नाम की, और न चितवे दास।
जो कुछ चितवने नाम बिन, सोई काल की फाँस॥

मन की शक्तियों से लड़ने के उपाय

मन की इन पाँचों शक्तियों के परिवार से लड़ने के लिए विवेक-ज्ञान से 'सत्यनाम' सुमिरण सहित जो कर्म होगा वही निजधर्मी है।

प्रगटे प्रेम विवेक दल, कहे कबीर समझाई।

उग्र ज्ञान अति बली, जेहि सुन मोह डराई।

इन्द्री दुष्ट महा अपराधी। कुटिल काम कोई विरले साधा ॥

कामिनि रूप काल की खानी। तजहु तासु संग हो गुरुज्ञानी ॥

जबकि काम उमंग तन आवै। ताहि समय जो आप जुगावे ॥

शब्द विदेह सुरत लै राखै। गहि मन मौन नाम रस चाखे ॥

विवेक के मंत्री और सेना नायक 'धर्म और ज्ञान' हैं। विवेक की ध्वजा तथा बाजे 'प्रेम और भक्ति' है। 'निज का आनंद' महल है जिसमें 'श्रद्धा' पटरानी सेवा करती है। विवेक के पुत्रगण 'निर्भय संत' और 'सुशील स्वभाव' हैं। विवेक रूपी राजा के वंश में केवल 'प्रेम और सुख' ही उत्पन्न होते हैं। विवेक की चार बेटियाँ हैं — दया, क्षमा, करुणा, शील जो सत्य के लिये शुभकारी हैं। 'सत्य और संतोष' सदा विवेक के साथ हैं जो नरक के रास्तों से बचाकर रखते हैं। 'सुबुद्धि' दासी के समान सबकी लाज रखती है। 'ध्यान (लौ)' दास की तरह सब कार्यों को सिद्ध करते हैं। 'सुचिता', 'शील', 'अनुराग' और 'क्षमा स्वभाव' बनकर वैरागी बैठे हैं। 'सहज' रूप सिंहासन पर विवेक की बैठक है। 'व्रत' महामंत्री तो 'सत्य' ही विवेक का प्रचारक है। मंत्री, 'निर्भय' रूप साथ रहकर प्रकाश देते हैं। वेद भी विवेक की सेवा करते हैं।

1. विवेक ज्ञान से समझ आ जाता है कि 'काम' रूप कामिनी सेना

बस रक्त-माँस-हाड़-त्वचा और रोम का देह लोथड़ा है। इस देह के नौ द्वारों से नाक, मेल, कफ, लार, पसीना, मूत्र-विष्ठा ही बाहर आते हैं। नाखून व्याधि उत्पन्न करते हैं। शरीर में गन्दगी और दुःख के सिवा सपने में भी सुख नहीं है। इस प्रकार ज्ञान-विवेक 'काम' की सेना को समाप्त कर देता है। मन की प्रथम अमोघ-शक्ति 'काम' को ज्ञान-विवेक के सुरति शब्द रूपी निदान (औषधि) से माता, साँपनि या विष के बेल कहकर परास्त कर दो।

2. 'काम' में बाधा उत्पन्न होने पर या असफलता होने पर काम अपने तामसी-तेज 'क्रोध' को भड़का कर आगे कर देता है। क्रोध मनुष्य के तन-मन में प्रवेश करके विवेक से लड़ता है। 'काम' इच्छा को सफल करने आए क्रोध को विवेक के धीरज-कर्म-संतोष-सुबुद्धि-ज्ञान से विचार करके 'क्षमा' से मारा जाता है। 'क्षमा' अपने 'शील' रूप धनुष और भक्ति ज्ञान से मुस्कुरा कर लड़ने से रोक देती है। क्रोध की अग्नि से काँपने वाले को मीठे वचन बोलकर शान्त कर दो। जैसे जल अग्नि को बुझा देता है, इसीप्रकार क्रोध भी 'क्षमा' के सामने पानी में गिरने के समान ठण्डा हो जाता है।
3. 'लोभ' तो मोह का भी राक्षस मंत्री है, काम-क्रोध से भी अधिक प्रबल-शक्तिशाली है। ज्ञान-विवेक से विचार कर 'संतोष' की शक्ति से काम लेना चाहिए। संतोष अपने क्षमा-वाण से लोभ को मार देगा। लोभ के धनुष को संतोष 'सुमिरण' करके रोक देता है। लोभ की चिंता रूपी शक्ति को भी संतोष अपनी ज्ञान शक्ति से निष्फल कर देगा। लोभ जब आत्महत्या के लिए अग्रसर करने अत्यंत संताप लाता है तो संतोष-ज्ञान की दया खड़क से उसे निष्फल कर देता है। संतोष हमें जाग्रत रखकर

लोभ की अचेतन शक्ति से बचाता है। जब साधारण आदमी को लोभ रूप में उलझाता है तो संतोष उसे राजाओं की वस्तु बताकर छोड़ देता है। लोभ अपने सोने-चाँदी के भण्डार का लालच देता है तो संतोष यह ज्ञान देता है कि ये साथ नहीं जाते। संतोष अपने सत्य के धनुष से लोभ की सेना में उदासी व्याप्त कर धीरज की खड़ग से लोभ को मिटा देगा। वाणी है —

काम क्रोध विचले, विचले लोभ अकाज।
महामोह मन में लखे, गयो हमारो राज॥
काम क्रोध दोऊ गये, गये लोभ दल भाज।
दया क्षमा संतोष बल, रहै विवेक सो गाज॥
काम परबल अति भयंकर, महादारुण काल हो।
सुर नर मुनि यक्ष किन्नर, सबहिं कीन्ह बेहाल हो॥
सबहि लूटे बिरले छूटे, ज्ञान गुरु जिन्ह दृढ गहे।
गुरु ज्ञान दीप समीप सतगुरु, भक्ति मारग तिन्ह लहे॥

4. कबीर साहिब ने चेताया है कि 'सत्यनाम' भक्त के विवेक की दया, क्षमा और संतोष बल की गाज (विद्युत शक्ति) से काम-क्रोध और लोभ का दल-बल भाग जाता है।

मन और माया के काम-क्रोध-लोभ-मोह, सह परिवार सत्य के विवेक ज्ञान से परास्त हो जाते हैं। 'मोह' अंत में अहंकार को साथ लेकर विवेक-ज्ञान पर हमला करते हैं। इस अवस्था में मोह और मद सहमें हुए रहते हैं। फिर भी मोह की अगुवाई में गर्व बड़े-बड़े शब्द बोलकर ज्ञान-सुधि भुलाने की कोशिश करता है। इससे बचने ज्ञान को 'चेतन' रखकर 'दया' के वाण से गर्व का क्रोध नष्ट करें। मोह के आलस्य निंदा भ्रम को जाग्रत चेतन-शक्ति से नष्ट करें। मोह फाँस के अज्ञान रूप अंधकार को विवेक के प्रकाश-रूपी ज्ञान से मिटा दें। वाणी है —

कहे कबीर विवेक दल, अटल ज्ञान दल गाज।

अब तो निर्मल हो गये, गये मोह दल भाज ॥
 सुनहु धर्मनि सत्य विचारा । बिना विवेक नहिं उतरे पारा ॥
 बिना विवेक काल धरि खाई । धरि धरि मारे काल कसाई ॥
 कालदूत जग फिरै फिरावै । मोह सेन की वृद्धि करावे ॥
 जेत महातम जग महँ होई । काल फन्द जानहु सब सोई ॥
 बिना विवेक पारख नहिं पावै । झूठी आश लगी से धावे ॥
 बिना विवेक न चिन्हे सोई । काल दयाल दोऊ कस होई ॥
 सत्गुरु उपदेश जब देही । कालजाल छुड़ावन लेही ॥
 बिना विवेक काल गुण गावैं । बार बार भौं चक्कर जावैं ॥
 मोह सकल व्याधिन को मूला ।
 जाते उपजत सकल जग सूला ॥



स्वर्ग पाताल मृत्यु मण्डल रचि, तीन लोक विस्तारा ॥
 हरिहर ब्रह्मा को प्रगटायो, तिन्हें दियो शिर भारा ॥
 ठाँव ठाँव तीरथ रचि राख्यो, ठगवे को संसारा ॥
 चौरासी बीच जीव फँसावे, कबहुँ न होय उबारा ॥
 माया फाँस फँसाय जीव सब, आप बने करतारा ॥
 सद्गुरु शरण जो अमरलोक है, ताको मूँदो द्वारा ॥

सद्गुरु कौन ?

सच्चे गुरु का भेद देते हुए साहिब धर्मदास को समझाते हैं—

भृंग मता होय जेहि पासा । सोई गुरु सत्य धर्मदासा ॥

कह रहे हैं कि जिसके पास भृंग मता हो, वही सच्चा गुरु है, वही सद्गुरु है। अब यह भृंग मता क्या है ? 27 लाख कीट हैं। भृंगा उन सबमें निराला है। वो केवल पुरुष ही है। उसकी मादा नहीं है। उसका वंश कैसे चलता है ? वो किसी भी कीड़े को पकड़ लाता है। मिट्टी का घर बनाता है वो। उड़ता भी बड़ी स्पीड में है। उसकी आवाज़ में एक जादू है। वो कीड़े को मिट्टी के घर में रख कर अपनी आवाज़ सुनाता है। बड़ी रोमांचित करने वाली है उसकी आवाज़। उस आवाज़ से उसे वो अपने जैसा कर देता है। पर यदि कीड़ा उसकी आवाज़ सुने ही न तो नहीं हो पाता है वो उसकी तरह। तो भृंगा उसे छोड़कर इधर-उधर चक्कर काट कर आता है और फिर आकर अपना शब्द सुनाने लगता है। यदि वो फिर भी न सुने तो भृंगा फिर उड़कर चला जाता है और फिर एक चक्कर काटकर आता है और अपनी आवाज़ सुनाने लगता है। यदि वो सुन ले तो उसकी तरह हो जाए, पर यदि तीसरी बार भी न सुने तो भृंगा उसे छोड़ देता है। वो कीड़ा ही रह जाता है, भृंगा नहीं बन पाता है। अब वो दूसरे कीड़े को पकड़कर लाता है और यही खेल उसके साथ भी शुरू करता है।

यही काम सद्गुरु का है। सद्गुरु भी शिष्य को अपनी सुरति से अपने समान कर देता है। कीड़े को कुछ नहीं करना है। पकड़कर भी उसे भृंगा ही लाता है, नीचे गिराकर शब्द भी उसे खुद ही सुनाता है। उस कीड़े को तो केवल सहमति जतानी है, शब्द सुनना है। पर वो सुने ही

नहीं तो कैसे होगा !

इसी पर साहिब कह रहे हैं—

भृंगी शब्द कीट जो माना ।
वरण फेर आपन कर जाना ॥

जो कीड़ा भृंगे का शब्द सुन लेता है, वो अपना वर्ण भूलकर उसकी तरह हो जाता है। यानी गुबरैला होगा तो वो अपनी आदतें भूलकर भृंगा हो जायेगा, ततैया होगा तो वो ततैया वाली आदतें, ततैया वाले गुण छोड़कर भृंगे के गुण अपना लेगा, उसकी तरह ही हो जायेगा।

कोई कोई कीट परम सुखदाई ।
प्रथम आवाज़ गहे चित्तलाई ॥

पर साहिब कह रहे हैं कि कोई-कोई कीट बड़ा सुखदाई होता है, जो पहली आवाज़ में ही शब्द को ग्रहण कर लेता है और उसी की तरह हो जाता है।

कोई दूजे कोई तीजे मानै ।
तन मन रहित शब्द हित जानै ॥

कोई दूजे और कोई तीजे शब्द में ग्रहण करता है। कुछ-कुछ कीट कठिन हैं, जो पहली में परिवर्तित नहीं होते हैं, दूसरी या तीसरी आवाज़ में परिवर्तित हो जाते हैं।

भृंगी शब्द कीट ना गहई ।
तौ पुनि कीट आसरे रहई ॥

पर जो कीड़ा उसका शब्द सुनता ही नहीं, तीसरी बार भी डर जाता है या सुनना नहीं चाहता, वो फिर कीड़ा ही रह जाता है।

गुरुशब्द निश्चय सत्य माने, भृंगि मत तब पावई ।
तजि सकल आसा शब्द बासा, कागा हंस कहावई ॥

ऐसे ही गुरु शब्द सुखदाई है। भृंगे की भू-भू की प्रकिया में

स्पन्दन है। कुछ कीट पहले में नहीं हो पाते हैं परिवर्तित। क्यों नहीं हुए? क्योंकि समर्पित नहीं होते। जब तक समर्पित होकर नहीं सुनता, उसका परिवर्तन नहीं हो पाता। फिर तीन बार में भी न हो तो भृंगा उसे छोड़ देता है, दूसरे को ढूँढ़ता है।

तो पुनि कीट आसरे रहई.....॥

फिर नहीं बन पाता है वो भृंगा, कीट ही रह जाता है। उसने सहमति नहीं दी। यह सहमति साधारण नहीं है।

पहले दाता शिष्य भया, जिन तन मन अरपा शीश।

पीछे दाता सतगुरु भया, जिन नाम दिया बखशीश॥

सभी सहज-मार्ग, सहज-मार्ग कहे जा रहे हैं, और कमाई-कमाई कहे जा रहे हैं। ये दो पहलू हैं। साहिब कह रहे हैं कि तुम्हें कुछ भी नहीं करना है, सद्गुरु सभी चीजें उत्पन्न कर देगा। ये चीजें अपने-आप आपमें आती जायेंगी। ज्ञान भी खुद ही आ जायेगा, भक्ति भी खुद ही आ जायेगी, मन पर कण्ट्रोल भी खुद ही आ जायेगा, रूहानियत भी खुद ही आ जायेगी, शक्तियाँ भी खुद ही आती जायेंगी। आप कहेंगे कि हम नहीं करेंगे तो कैसे होगा! यह जो 'हम' है, इसे संचालित कौन कर रहा है नाम के बाद! गुरु की ताकत ही इसका संचालन कर रही है, इसलिए अपनी 'मैं' नहीं लाना बीच में, केवल सहमति रखना।

एक ने कहा कि यदि गुरु की कृपा से ही सब होता है तो जो हम ठगी कर रहे हैं, वो भी उसकी ही इच्छा से होता होगा। मैंने कहा—सुन, पूरा-पूरा जबाव दूँगा। यह तब होता है जब हम पूर्ण रूप से समर्पित हो जाते हैं। तब चाहकर भी ग़लत नहीं कर पायेंगे। अभी आप प्रभु के भरोसे चल रहे हैं, प्रारब्ध आपका संचालन कर रहा है, कर्मानुसार आपको फल मिलेगा। मान लो कि कुँए में गिरना होगा तो पक्का गिरोगे। पर जब सद्गुरु पर आश्रित होते हैं तो सद्गुरु कर्म को एक तरफ कर देते हैं। वो घटना टल जाती है।

कोटि कर्म पल में कटे, जो आवे गुरु ओट॥

जो भी काम करेंगे, जो भी नुक़सान या अहित होने वाला होगा, वहाँ गुरु की ताक़त रक्षा करेगी। जो भी होगा वो हित में ही होगा। इसलिए हित-अनहित सबमें उसी की रज़ा मानना। ...तो कहने का भाव है कि सब कुछ वही करेगा, तुम्हें कुछ नहीं करना है।

सुरति करौ मम साईया, हम हैं भवजल माहिं।

आप ही हम बह जायेंगे, जो न गहोगे बाहिं ॥

अर्थात् साहिब ने इंगित किया कि वो अविलंब बदल देगा। कैसा बना देगा? स्वयंमय बना देगा। यही कह रहे हैं कि परिश्रम करने की ज़रूरत नहीं है।

दुनिया में अनेक गुरु हैं जो कहते हैं कि आपको पार कर देंगे, पर जब उनके लोगों को देखते हैं तो पता चलता है कि उनमें कोई बदलाव नहीं है। यानी वे सच्चे गुरु नहीं हैं। इसलिए साहिब ने सतर्क करते हुए कहा—

भृंग मता होय जिहि पासा। सोई गुरु सत्य धर्मदासा ॥

जैसे भृंगा कीट के बिना प्रयास के उसे बदल देता है, ऐसे ही शिष्य की चेष्टा बिना ही यह काम गुरु कर देता है।

आप नहीं देख रहे हैं अपने बच्चों को कि उनमें आपकी आदतें आ रही हैं। यह आपका एक शुक्राणु है। गुरु की सुरति शिष्य की आत्मा तक पहुँची। उसमें सब चीज़ें सहज ही आ गयीं। फिर काम, क्रोध नहीं लगेगा। साहिब ने ऐसे गुरु के लिए कहा कि जो भृंग की तरह बदलने की क्षमता रखता हो। 'गुरु मिलने से झगड़ा ख़त्म हो गया ॥' अध्यात्म की खोज समाप्त हो जाती है। योग में यह प्रावधान नहीं है।

सहज-मार्ग क्या है? पूरी जिम्मेदारी गुरु की है। आपकी मोह-माया हटती जायेगी, आपके अंदर के विकार समाप्त होते जायेंगे, एक चौकीदार आपकी सुरक्षा के लिए खड़ा रहेगा हमेशा। 'मेरा हरि मौको भजे, मैं सोऊँ पाँव पसार ॥' वाली बात हो जायेगी। यह है—सहज-मार्ग। तुम्हें कुछ नहीं करना है। यह है—भृंग मता।

गुरु को कीजे दण्डवत्, कोटि कोटि प्रणाम।

कीट न जाने भृंग को, करिले आप समान ॥

आदमी तो शंका में है कि हमें क्या करना है। कोई कुछ कह रहा है, कोई कुछ। अपनी ताकत से आप माया को नहीं छोड़ सकते हैं। गुरु नाम की ताकत खुद यह काम करेगी।

जो आपको कह रहा है कि कुछ कर, कमाई कर, समझना कि वो संत नहीं है, संत वेश में कोई पाखण्डी है, जिसे यथार्थ ज्ञान कुछ भी नहीं है, केवल किताबों से पढ़कर सुना रहा है। संत तो सक्षम होता है, पर वो अक्षम है; संत आँखों देखी वाली बात करता है, वो किताबों वाली बात कर रहा है; संत यथार्थ में अमर-लोक से होकर आते हैं, उसने कभी अमर-लोक सपने में भी नहीं देखा है। यदि सपने में भी देखा होता तो जान जाता कि अपनी ताकत से नहीं देखा, कोई दिखा गया। यह पक्की बात है कि सपने में भी अमर-लोक नहीं देखा जा सकता है। फिर वहाँ पहुँचना तो बड़ी दूर की बात है। इसलिए जिसके पास भृंग मते वाली थ्युरी नहीं है, वो आपका बहुत बड़ा बैरी है, क्योंकि आपको धोखे में रखे हुए हैं। इस बात को अपने दिल में गहराई से उतार लेना कि वो आपका सर्वनाश करने पर तुला है, जो कह रहा है कि कुछ कमाई कर, कुछ साधना कर, तभी कुछ होगा। क्योंकि उस पाखण्डी को पता नहीं है कि—

ना कुछ किया ना करि सका, ना करने योग शरीर।

जो कुछ किया साहिब किया, भया कबीर कबीर ॥

जो कमाई करने को कह रहा है, इसका सीधा सा मतलब है कि वो कहना चाह रहा है कि उसने भी अपनी कमाई से ही सब कुछ हासिल किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वो कभी अमर-लोक गया ही नहीं है। उसका गुरु भी संत नहीं हो सकता है। यदि होता तो वो ऐसी बात नहीं करता। कहीं से भी उसका मत संत-मत नहीं है, कहीं से भी उसका मत भृंग-मत नहीं है। वो एक झूठा है, जो अपने साथ-साथ आपको भी

भवसागर में डुबाने में लगा हुआ है। उसका मुद्दा केवल धन कमाना हो सकता है, आपकी मुक्ति नहीं।

हमारे देश में शीश पर हाथ रखकर नाम दिया जाता है। कोई कहता है कि हमें गुरु जी ने माइक पर नाम दिया, कोई कहता है कि टी. वी. पर दिया। नहीं, नाम ऐसे नहीं दिया जाता। एक ने मुझसे भी पूछा कि यदि आपको हज़ार आदमी को एक साथ नाम देना पड़ेगा तो क्या तब भी ऐसे ही शीश पर हाथ रखकर देंगे? मैंने कहा कि यदि एक लाख आदमी को भी नाम देना पड़ा तो ऐसे ही दूँगा, क्योंकि नाम देने की विधि ही यही है। वो ऐसे ही दिया जाता है। यही सिस्टम है नाम का। क्योंकि वो किरणें शिष्य को प्रदान करनी हैं।

एक शराबी मेरे पास आया, थोड़े दिन हुए थे शराब छोड़े; कहा कि नाम दो। मैंने कहा कि अभी थोड़ा कण्ट्रोल करो, बाद में दूँगा। बाद में वो किसी दूसरे महात्मा से नाम लेकर आया, अपने ही गुरु को गालियाँ देने लगा, कहने लगा कि मैं शराब में धुत था तो नाम दे दिया। क्या ऐसे देते हैं नाम! मुझे तो पता भी न चला कुछ। यानी गुरु जी को शिष्य की कुछ ख़बर ही नहीं थी कि क्या मामला है। तभी कहा—‘पानी पीजिये छानि के, गुरु कीजे जानि के॥’ गुरु जी तो बस अपनी संख्या बढ़ाने में लगा था। मैं समाज को कह रहा हूँ कि ऐसे लोगों से सतर्क रहो, जिनको आपकी ख़बर ही नहीं है कि क्या कर रहे हैं आप। यदि गुरु जी को आपके पाप कर्मों की ख़बर नहीं है तो फिर वो आपका कल्याण भी नहीं कर पायेगा, क्योंकि जब काल आपकी आत्मा को लेने आयेगा तो भी उसे ख़बर न होगी और वो आपको कहीं भी जाकर पटक देगा। आपका वो पाखण्डी गुरु आपको काल से बचा नहीं पायेगा। इसलिए पूर्ण गुरु की खोज करनी होगी। साहिब के ये शब्द याद रखने होंगे—

भृंग मता होय जिहि पासा। सोई गुरु सत्य धर्मदासा॥



मन के 12 पंथ

कबीर पंथ की जितनी भी भक्तियाँ हैं, निरंजन के अधीन हैं। निरंजन को पराधीन किया साहिब ने तो प्रार्थना की, कहा कि धरती पर जाओगे तो यह चीज़ फैलाओगे। फिर तो सभी चले जायेंगे। फिर शब्द दिया है। धरती पर आत्माएँ रखनी हैं या नहीं?

जैसा कि पहले भी बताया कि कई बार निरंजन महाप्रलय भी करता है। पूरे ब्रह्माण्ड का नाश करता है। सभी ग्रह नक्षत्र को खत्म करके अपने में समाता है। पूरी आत्माओं को लेकर अमर-लोक के पास जाता है, परम-पुरुष को पुकार करता है, कहता है कि ये सारी आत्माएँ वापिस लो, मुझे नहीं बनानी है सृष्टि। वहाँ से आवाज़ आती है कि हे निरंजन, जाओ, दुबारा सृष्टि करो, तुमने वरदान पाया है, अब जाओ, फिर बनाओ।

कई बार सवाल उठता होगा कि इतनी मेहनत क्यों करनी है? पूरी दुनिया को साहिब मुक्ति दे सकते हैं। इसमें से उन्हें नहीं ले जाना है, जो दुनिया को पसन्द कर रहे हैं। निरंजन भी आखिर साहिब का ही तो बेटा है। निरंजन ने प्रश्न किया, कहा कि जो भी आपकी भक्ति में आ जायेगा, पार हो जायेगा। तो यह संसार खाली हो जायेगा। ले चलो फिर मुझे भी, खाली करो संसार। फिर कहा कि या जीवों को उलझन में रखो। तुम्हारे 12 पंथ मैं भी चलाऊँगा। साहिब ने कहा कि ठीक है। इसलिए उलझाव है।

द्वादश	पंथ	काल	परमाना।
भूले	जीव	न	पाय
			ठिकाना।।

इनमें से कोई बीजक की बात करेगा, कोई आत्मा को ही परमात्मा कहेगा, कोई सतनाम की बात करेगा, कोई राम की भक्ति करेगा, कोई परम धाम की बात करेगा, कोई केवल हरिजनों की बात करेगा।

इसलिए ये सभी वंशगत चलेंगे। इनके लोग अमर लोक में नहीं जायेंगे; निरंजन के ही अधीन रहेंगे।

47 लाख साल के 4 युग होते हैं। 4 युग हो गये तो एक चौकड़ी हुआ। 100 बार चार युग हुए तो 100 चौकड़ी युग हुए। 100 के बाद हजार, फिर दस हजार, फिर लाख, फिर दस लाख, फिर करोड़, फिर दस करोड़, अरब, 10 अरब, फिर खरब, फिर नील, दस नील, पदम, दस पदम, संख्य, 10 संख्य, असंख्य, 10 असंख्य, फिर अनन्त।

4 असंख्य चौकड़ी युग हो चुके हैं। यानी अरबों बार सृष्टि का नाश हो चुका है।

परम-पुरुष ने कहा कि इतना राज्य करना ही है। एक बार निरंजन ने कहा कि मुझे भी नाम दे दो। साहिब ने कहा कि यदि तुझे नाम दे दूँगा तो तू कभी छल नहीं कर सकेगा। छल छोड़ दिया तो आत्माएँ निकल जायेंगी।

अब यहाँ आदमी संस्पेंशन में आ जाता है। इसका मतलब है कि सत्पुरुष चाहते हैं कि सभी जीव न निकलें। और शाप दिया कि एक लाख जीव रोज़ खाना तो यह तो जीवों को ही कष्ट दिया। नहीं, यह कष्ट निरंजन को है। जब आपको चोट पहुँचती है तो यह आत्मा को कष्ट नहीं होता है। आत्मा का कुछ नहीं बिगड़ता है। यह कष्ट निरंजन को होता है। उसी को मुसीबत दी है। वो दर्द उसे होता है। यह समझाना कितना कठिन है।

कई जन्म आपने पहले निरंजन की भक्ति की है। कई जन्मों तक पुण्य कर्म किये। आप महा भाग्यवान हैं। अब आप सद्गुरु की शरण में पहुँचकर नाम प्राप्त किये। आप साधारण नहीं हैं। इसलिए आपका नम्बर लगा है। या फिर स्वयं संतजन कृपा कर देते हैं।



मन का इलाज

हरेक बीमारी का कोई न कोई इलाज, कोई न कोई तोड़ जरूर होता है। यह अलग बात है कि कोई बीमारी डॉक्टरों की पकड़ में नहीं आती या फिर किसी बीमारी का उन्हें इलाज नहीं मिल पाता जबकि किसी बीमारी का धीरे धीरे वो काट ढूँढ़ निकालते हैं।

मन भी आत्मा पर एक बीमारी की तरह लगा हुआ है। सबका हृदय इसने गंदा करके रखा हुआ है। फिर यह बीमारी है भी बड़ी ताकतवर। क्या इसका भी कोई इलाज है? हमारे ऋषि, मुनि, पीर-पैगंबर किसी के पास इसका तोड़ नहीं था।

साहिब कह रहे हैं—

नाम होय तो माथ नमावे । ना तो यह मन बाँध नचावे ॥

निःसंदेह इस मन का कोई जोर आपपर नहीं चल रहा है। मन बेबस है। पूरी दुनिया को यह नचा रहा है। एक नशा-सा मन का सबके ऊपर है। माया का एक नशा-सा सबके ऊपर छाया है। पर आप मन की पकड़ से आजाद हैं। मन का नशा छाता है तो काम, क्रोध आदि जाग्रत होते हैं। ये चीजें आपमें भी हैं, पर आपके पूरे कण्ट्रोल में हैं। आपका ये चीजें कुछ नहीं बिगाड़ पा रही हैं।

पुरुष शक्ति जब आन समाई । तब नहीं रोके काल कसाई ॥

कहा कि जब परम-पुरुष की ताकत आकर समायेगी तो काल कुछ नहीं कर पायेगा। जिस दिन नाम मिलता है उस दिन परम-पुरुष की ताकत आकर समाती है। तब काल का जोर नहीं चलता है।

मैंने जो कहा कि जो वस्तु मेरे पास है, वो कहीं नहीं है, प्रमाणित करता हूँ। पूर्ण गुरु आपको बदल देता है, दिव्य-दृष्टि खोल देता है।

10वाँ द्वार खुलता है तो चाँद, तारे आदि नज़र आते हैं, पर जब 11वाँ द्वार खुलता है तो मन नज़र आता है।

वो दिव्य-दृष्टि खुलेगी तो काम, क्रोध दिखेगा। अन्यथा कितनी भी तपस्या करना, यह मन काबू में नहीं आयेगा, यह समझ नहीं आयेगा। कपिल मुनि, पाराशर ऋषि आदि ने कम तप नहीं किया था। पर नहीं हो सका मन काबू में। इसलिए—

नाम होय तो माथ नमावे । ना तो यह मन बाँध नचावे ॥

परम पुरुष की इच्छा से साहिब हर युग में निरंजन के लोक में आते हैं और जीवों को काल से कष्ट से छुड़ाकर अमर-लोक ले जाते हैं। पहली बार जब साहिब धरती पर आए तो 100 साल रहकर वापिस गये। पर एक भी जीव को नहीं ले जा सके। परम-पुरुष ने पूछा कि कोई भी जीव नहीं लाए। कहा—नहीं। परम-पुरुष ने पूछा—क्यों? कहा कि जिसे सुबह समझाता हूँ, शाम को भुला देता है। जिसे शाम को समझाता हूँ, वो सुबह भुला देता है। तब परम-पुरुष ने कहा कि यह लो गुप्त वस्तु (नाम)। जिस घट में यह वस्तु दे दोगे, उसपर काल का जोर नहीं चलेगा।

तब परम-पुरुष को प्रणाम करके उनकी आज्ञा से साहिब शून्य में निरंजन के लोक की ओर आए। जब साहिब आने लगे तो निरंजन झांझरी द्वीप में साहिब के सम्मुख आया, बोला—यहाँ क्यों आए हो? वापिस जाओ। यहाँ पर निरंजन और साहिब के मध्य बड़ी गोष्ठी हुई।

साहिब ने कहा—

**तासो कह्यो सुनो धर्मराई । जीव काज संसार सिधाई ॥
तप्त शिला पर जीव जरावहु । जारि वारि निज स्वाद करावहु ॥
तुम अस कष्ट जीव कह दीन्हा । तबहि पुरुष मोहि आज्ञा कीन्हा ॥**

जीव चिताय लोक लै जाऊँ। काल कष्ट से जीव बचाऊँ॥

कहा कि हे निरंजन, तुमने बहुत छल, बल से जीवों को बाँधा हुआ है। तप्त शिला पर उन्हें अनेक कष्ट देकर आनन्द लूट रहे हो। परम पुरुष ने मुझे यहाँ भेजा है, मैं जीवों को यहाँ से छुड़ाकर अमर लोक ले जाऊँगा।

तबै निरंजन बोले बानी। सकल जीव बस हमरे ज्ञानी॥
तिनसौ साठ पैठ उरझोरा। कैसे हंसन लेव उबेरा॥

निरंजन ने कहा कि मैंने सबको उलझाया हुआ है। 360 ऐसे स्थान हैं, जहाँ निरंजन ने थोड़ी-थोड़ी शक्तियाँ रखी हुई हैं। उन्हीं को देख जीव उलझा हुआ है। निरंजन ने कहा कि कैसे छुड़ाओगे हंसों को? तब ज्ञानी अस बोले बानी। जमते जीव छुड़ावहुँ आनी॥
पुरुष नाम को कहूँ समझाई। जम राजा तब छोड़ि पराई॥
घाट घाट बैठे उरझोरा। हमरे शब्द ते होय निबेरा॥
सुन रे काल दुष्ट अन्याई। शब्द संग हंसा घर जाई॥

साहिब ने कहा कि मेरे पास नाम है, जिसके सहारे हंस अमर लोक पहुँच जायेगा। अब तुम उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाओगे।

तब निरंजन ने कहा—

का ज्ञानी देहो अधिकारा। हमरो नाहिं छूटे जम जारा॥
पाँच पचीस तीन गुन आही। यह लै सकल शरीर बनाई॥
तामें पाप पुण्य का वासा। मन बैठा ले हमरी फाँसा॥
जहाँ तहाँ जग भरमावै। ज्ञान संधि कुछ रहन न पावै॥
एक शब्द की केतिक आशा। मेरे हैं चौरासी फाँसा॥

कहा कि तुम जीवों को मुझसे छुड़ाकर नहीं ले जा सकते हो। मैंने पाँच तत्वों से शरीर की रचना की है। उस पर फिर पाप पुण्य में जीवों को बाँध दिया है। फिर मन रूप में खुद भी अन्दर समाया हुआ हूँ। किसी को सोचने भी नहीं दे रहा हूँ कि क्या मामला है। तुम्हारा एक शब्द

क्या करेगा, मैंने 84 लाख फाँसों बनाई हुई हैं, एक में से निकाल दूसरी में फेंक देता हूँ।

बोले ज्ञानी शब्द विचारी। छूटे चौरासी की धारी।
छूटे पाँच पचीस गुण तीनों। ऐसा शब्द पुरुष में दीन्हो॥

साहिब ने कहा कि मेरे पास बड़ा जबरदस्त नाम है, जिस घट में दे दूँगा, उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाओगे, वो आजाद हो जायेगा।

निरंजन ने कहा—

हे ज्ञानी का करो बड़ाई। हमते नाहिं छूट जीव जाई॥
इतने युग भये तुम देखा। ज्ञानी हंस न एको पेखा॥
का तुम करो का शब्द तुमारा। तीन लोक परलय कर डारा॥
साधु संत हम देखी रीति। परलय परे सकल जगग जीति॥
करम रेख बाँधै सब साधा। सुर नर मुनि सकलो जग बाँधा॥

कहा कि इतने युग हो गये, क्या एक भी हंस सतलोक पहुँचा। मैंने इतनी ताकत से जीवों को बाँधा हुआ है कि छूट नहीं सकते हैं। तुम और तुम्हारा एक शब्द क्या कर लेगा। मैं तीन लोक का नाश कर देता हूँ।

निरंजन ने कई बार सृष्टि का प्रलय भी किया है। जलेबी बना देता है दुनिया की। ये सब काम साहिब के नहीं हैं।

तो निरंजने ने कहा कि इतने पर भी कर्मों में जीव को बाँधा हुआ हूँ। आम आदमी की क्या बात है, देवता, मुनि आदि सबको बाँधा हुआ है। एक भी हंस को जाने नहीं दूँगा।

ज्ञानी कहै काल अन्यायी। शब्द बिना तू खाय चबायी॥
हंस हमारा शब्द अधिकारा। पुरुष परताप को करे सम्हारा॥
नाम जपै अरु सुरति लगाई। मिले कर्म लागे नहीं काई॥
शब्द मानि होय शब्द सरूपा। निश्चय हंसा होय अनूपा॥

साहिब ने कहा कि हे निरंजन, तब इनके पास सच्चा नाम नहीं था, तूने खा लिया। अब मैं परम पुरुष का बड़ा जबरदस्त नाम दूँगा और

तुम्हारा जोर अब जीव पर नहीं चलने दूँगा। पाप और पुण्य का ज्ञान भी जीव को अन्दर से होता जायेगा। नाम उनकी रक्षा करेगा और सब बंधनों से छुड़ाकर अमर-लोक ले जायेगा।

निरगुन काल तब बोले बानी। उरझे जीव सकल जमखानी॥
कैसे के तुम शब्द पसारो। कौने विधि तुम जीव उबारो॥
ऐसे जीव सकल हैं करनी। कैसे पहुँचें पुरुष की सरनी॥
जग में जीव क्रोध विकारा। कैसे पहुँचै पुरुष के द्वारा॥

निरंजन ने कहा कि मैंने काम, क्रोधादि विकारों में जीव को फँसा दिया है। फिर वे परम पुरुष के लोक में कैसे पहुँचेंगे। इस पर भी यम के 14 दूत मैंने प्रत्येक शरीर में बिठाए हुए हैं। तुम उन्हें कैसे निकालोगे? कहा कि जीव बड़ा गंदा हो गया है, तुम्हारी बात कोई नहीं मानेगा।

ज्ञानी कहे करहु वरियारा। हमतो कीन्ह सकल निरवारा॥
जोई ज्ञानी होय हमारा। काम क्रोध ते होय नियारा॥
तृस्ना लोभहि देई बहाई। विषै जन्म सब दूर पराई॥
नाम ध्यान बल हंसा घर जाई। क्या रे काल तुम करो बड़ाई॥

साहिब ने कहा कि जिस शरीर में नाम दे दूँगा, वहाँ तेरा जोर नहीं चलेगा। वहाँ काम, क्रोध आदि कुछ नहीं कर सकेंगे और वो जीव निर्मल हो जायेगा। तुम उस जीव को छू भी नहीं कर पाओगे और वो हंस रूप होकर अपने देश चला जायेगा।

कहे निरंजन सुनो हो ज्ञानी। कथि हो ज्ञान तुम्हारी बानी॥
युगत महात्म सबै बताऊँ। तुम्हारा नाम ले पंथ चलाऊँ॥

अब निरंजन अपनी जगह पर आया, कहा कि मैं भी तुम्हारा नाम लेकर अपना पंथ चलाऊँगा यानी नकली नाम का प्रचार करूँगा।

आज आप देखें तो सभी सद्गुरु बने हुए हैं, सभी संत बने हुए हैं, सभी नाम दे रहे हैं। यह सब निरंजन का ही खेल है। बात वे निरंजन की ही कर रहे हैं और मोहर संतों की लगा रखी है।

तो निरंजने ने यह भी कहा

ज्ञानी मोर अपरबल ज्ञाना। वेद किताब भरम हम माना॥
इनको माने सब संसारा। कलि में गंगा मुक्ति द्वारा॥
देही दान से उतरे पारा। ऐसे सुमृत कहे विचारा॥
यह विधि जग जीव भुलाहीं। जरा मरन सब बंध बंधाहीं॥
सूतक पातक वेद विचारा। पूछ वेद से करहि संहारा॥
एकादशी मुक्ति को भाई। योग जग्य करवे अधिकाई॥

कहा कि मैंने वेद आदि के द्वारा कर्मकाण्डों में जीव को उलझाया हुआ है। सब इन्हीं को मानते हैं।

वेद में निरंजन ने अपनी ही बात की है। उसी ने बनाए हैं वेद। इसलिए साहिब का रहस्य उसमें नहीं दिया। तो उसने कहा कि कोई तुम्हारी बात नहीं मानेगा, इसलिए मत जाओ दुनिया में।

साहिब ने कहा—

सुनहु काल ज्ञान की संधि। छोरो जीव सकल की फँदी॥
जब निज बीरा हंसा पावै। योग बरत तप सबै नसावै॥
वेद किताब की छोड़े आसा। हंसा करे शब्द विस्वासा॥
ताके निकट काल नहिं आवै। निज बीरा जो सुरत लगावै॥
जोग बरत पतहू है छारा। अद्भुत नाम सदा रखवारा॥

कहा कि जिसे नाम मिल जाएगा, उसका सारा वहम अन्दर से धुल जाएगा। वो फिर कर्मकाण्डों को छोड़कर नाम में ही विश्वास करेगा। नाम सदा उसकी रक्षा करेगा। काल उसके निकट नहीं आ पायेगा।

जब निरंजन की बात न चली, वो कटने लगा तो उसने क्रोधित होकर कहा कि तुमने पहले भी मुझे मानसरोवर से निकाला था और अब मेरी दुनिया में तुम आए हो, इसलिए मैं बदला भी लूँगा। यह कह निरंजन ने विकराल हाथी का रूप धारण किया और साहिब पर झपटा।

ज्ञानी पुरुष शब्द कियो जोरा। पकड़ सूँड़ दाँत गहि मोरा॥
मारेऊ शब्द पाँय पर पेली। तोर सूँड़ समुद्र गहि मेली॥

पुरुष रूप तबहीं पुनि धारा। जौन सरूप सकल औतारा॥

साहिब कह रहे हैं कि तब मैंने वहाँ परम पुरुष का रूप धारण किया, अपने मूल रूप में आया और उसकी सूँढ़ पकड़कर समुद्र में फेंक दिया।

तब निरंजन अधीन हुआ, कहा कि क्षमा करो, मैंने आपको पहचाना नहीं था, आप तो स्वयं साहिब हैं, मेरा बड़ा भाग्य है कि जो आपने मुझे दर्शन दिये। अब आप दुनिया में जाएँ, पर मेरी भी एक विनती सुनें। कहा कि यदि आप सभी जीवों को अपने लोक ले जायेंगे तो मेरे शाप का क्या होगा। (क्योंकि निरंजन को रोज एक लाख जीव निगलने का शाप मिला था)। निरंजने ने कहा कि जो जीव पाप कर्म करेंगे, क्या वो भी पार हो जायेंगे। तब साहिब ने कहा कि जो जीव मेरे शब्द पर चलेंगे, मेरा कहा मानेंगे, उन्हें तुम हाथ भी नहीं लगाओगे। पर दूसरी ओर जो मेरे शब्द के विपरीत चलेंगे, उन्हें तुम ले जाना।

सुनो निरंजन वचन हमारा। नहीं सत्त वो जीव तुम्हारा॥

इस तरह साहिब का निरंजन से करार है। यही कारण है कि मैं आपसे कह रहा हूँ कि भजन हो सके तो करना नहीं तो कोई बात नहीं है, पर नाम लेकर गलत नहीं चलना। जो वस्तु दी, उसे संभालना। किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं करना।

सत्य नाम निज औषधी, खरी नियत से खाय औषध खाय अरु पथ रहै, ताकी वेदन जाय॥

नाम के बाद आप मन को समझने लग जाते हैं। तब मन असहाय लगता है, मोहताज लगता है। मन को जान लेने के बाद उसकी सारी शक्ति ख़त्म हो जाती है। ज्ञान के बाद मन की शक्ति नहीं रहती। आप रस्सी में साँप की कल्पना करके भयभीत हो जाते हैं। जब आपको पता चल जाता है कि यह साँप नहीं, रस्सी है, तब आप कौशिश करें कि मैं इसे साँप समझूँ तो भी धारणा नहीं बन पायेगी। तब जान गया। मन को जानने के बाद चाहकर भी दुनिया की चीज़ें प्रिय नहीं लग सकती हैं। मन भी दिखेगा। तो पता चल जाता है कि यह तो मन को प्रिय लगा।

बस, मन की ताक़त ख़त्म। मन तो पंगु है। वो कोई क्रिया करने में सक्षम नहीं है। मन आत्मा को कहता है, आम खाना है। मन आम नहीं खा सकता है, वो आत्मा को क्रियाशील रखता है। पर साहिब कह रहे हैं— **‘मन जाता है जान दे, गहके राख शरीर। उतरा पड़ा कमान से, क्या कर सकता तीर॥’** तीर की ताक़त कमान के साथ में है। कमान से उतरा हुआ है तो तीर का घाव नहीं होगा। मन की ताक़त तो आत्मा के साथ में है। मन बेचारा हो जायेगा, यदि आत्मा का सहयोग नहीं मिलेगा तो। अंधकार में रहकर हकूमत कर रहा है। मन की हरेक क्रिया समझ आने लगती है। काँटों के रास्ते पर चलते हैं तो एक पल भी असावधान नहीं होंगे। तो गुरु नाम से जो चेतन हो जाता है, सावधान हो जाता है, जानता है कि असावधान हुए तो मन चुभेगा। **‘उसको काल क्या करे, जो आठ पहर हुशियार।’** वो सुरति में रहने लगता है। **‘क्षण सुमिरे क्षण बिसरे, यह तो सुमिरण नाहिं। आठ पहर वीणा रहे, सुमिरण सोई कहाई॥’** आपके सामने काला साँप है तो हमेशा सावधान रहेंगे। तो मन से भी ऐसे ही सावधान रहना है। सच बताऊँ, तब जान जाता है कि मेरा बैरी मन के अलावा कोई नहीं है। मन से एक पल भी असावधान नहीं रहेंगे। असावधानी ही मन चाहता है। तब आप आत्मनिष्ठ रहेंगे। पर संतरी की तरह नहीं।

..... तो वो हमेशा प्रज्ञा अवस्था में रहने लगता है। बाकियों को जानने लग जाता है कि उलझे हैं। **‘जगत की नज़र में भक्त गया। भक्त की नज़र में जगत गया॥’** नाम के बिना करोड़ों प्रयास से भी सुधर नहीं सकोगे। तो परम-पुरुष ने कहा कि यह गुप्त वस्तु लो, मन का जोर नहीं चलेगा। इसलिए नहीं चलता है।

साहिब कहते हैं कि नाम से अंतःकरण चेतन हो जाता है। फिर अनात्म चीज़ों में शामिल नहीं होती आत्मा। जितना आवश्यक है, उतना ही करता है। मन को फालतू हरकत भी नहीं करने देता। यह है मन पर सवारी। **‘मन पर जो असवार है, ऐसा बिरला कोय।’** मन को चारों

स्वरूपों पर नियंत्रण होगा, उस पर अधिकार होगा। सोचें कि कितना महान हो गया। बड़े-2 तपस्वी भी मन की वृत्तियों पर नियंत्रण नहीं कर पाए। तभी तो मीरा कह रही है—‘सखी री मैं तो नाम रतन धन पायो।’ आत्मा का ठिकाना बताता हूँ। मन समझने लगता है। मन से तो भी होशियार रहना। अंतिम बिंदु तक इसकी चेष्टा रहती है कि मारूँ। जब भी लगे कि इसके बिना नहीं रह सकता हूँ तो यह सम्मोहन है। किसी पदार्थ के बिना नहीं जी सकते तो सम्मोहन है। मन के पास वेग है। गुरु ताक़त देता है तो मन पर नियंत्रण होने लग जाता है। 24 घण्टे मन के हमले हो रहे हैं। ‘चश्म दिल से देख तू, क्या-2 तमाशे हो रहे.....।’ प्रहार आत्मा पर हो रहा है। यह प्रहार किये जा रहा है। बड़े-2 धुरंधरों ने दीर्घ साधनाएँ की, काया को गला डाला, घर छोड़ सन्यासी हो गये, पर पार नहीं पाया मन का।

कितने तपसी तप कर डारे, काया डारी गारा।

गृह छोड़ भये सन्यासी, तऊ ना पावत पारा।।

मन बहुत ही बलशाली है, तीन लोक मन का पिंजड़ा है। ‘तीन लोक में मनहिं विराजी। तेहि ना चीन्हे पंडित काजी।।’ तीन लोक में मन विराजमान है। पर नाम के बाद मन शक्तिहीन हो जाता है। ‘मन के चलाए तन चले....।’ जिसका भी मन के चलाए तन चल रहा है, सर्वत्र नाश हो जायेगा। दीर्घ साधना के बाद भी मन नियंत्रण में नहीं आता। श्रृंगी ऋषि ने अपने शरीर को लकड़ी बना दिया था, सोचा कि खाऊँगा नहीं तो रक्त नहीं बनेगा, रक्त नहीं होगा तो वीर्य नहीं बनेगा, वीर्य नहीं बनेगा तो विषय हो पायेगा। बाद में वेश्या से शादी कर बैठा था।

मन की संज्ञा ही परमात्मा है। सहस्र नाम मन के हैं। पर उस परम सत्ता को साहिब कहा, सतपुरुष कहा। वेदों में वर्णित है। बड़ी बारीकी में बैठा है मन। पर नाम के बाद मन की हरकतें समझ आने लगती हैं। क्रोध आकर नाड़ियों को चलायमान करता है तो पता चल

जाता है। मन के वेग में विरोधी शक्तियाँ दिखने लगती हैं। किसी ने पत्थर मारा, आपने देख लिया तो पीछे हो जाते हैं। मेरा मन कभी नहीं कहता कि शादी करें। जानता है कि करेगा नहीं। कभी नहीं कहता कि माँस खाएँ। जानता है कि खाएगा नहीं। मन इसी सिस्टम से उलझा रहा है। मन का मास्टर नहीं है कोई। **‘मन पर जो असवार है, ऐसा बिरला कोई।’**

मुम्बई में एक शांति सम्वाय सम्मेलन हुआ था। उसमें दलाईलामा जी, शंकराचार्य जी, ईसाइयों के धर्मगुरु, जैनियों के धर्मगुरु आदि सबको बुलाया गया था। संयोग से मुझे भी बुलाया, क्योंकि मुझे महात्मा गाँधी शांति पुरस्कार मिला था। मैं चला गया। आपसी मतभेद, हिंसा, पाप आदि दुनिया में बढ़ जाने से बुद्धिजीवियों ने विचार किया कि धर्मगुरुओं को बुलाकर इसका कारण ढूँढ़ा जाए और यह समझा जाए कि कैसे दुनिया के लोग अच्छे बनें।

मुझे यह देखकर अफसोस हुआ कि कोई कहने लगा कि यह फलाना मंत्र करके लाभ होगा, कोई कहने लगा कि सुबह उठकर नहाएँ और शरीर की अच्छी साफ सफाई करें, कोई यज्ञ की युक्ति बताने लगा। पर किसी के पास भी माकूल फार्मूला नहीं था। वो तो छोड़ो, किसी को भी यह पता ही नहीं था कि ऐसा क्यों हो रहा है। मेरी भी स्पीच हुई। मैंने बताया कि कैसे मन का परिवार, काम, क्रोध आदि मनुष्य को अज्ञान में रखकर पाप की तरफ ले जा रहा है। नाम रूपी औषधि पाने के बाद जब ज्ञान आ जायेगा तो प्राणी किसी को नहीं मारेगा। यही एकमात्र फार्मूला है। बाद में जो मुख्य आयोजक था, उसने कहा कि मधुपरमहंस जी की बात सुनकर ऐसा लगा कि मानो कबीर धरती पर उतर आया है।

सुबह 4 बजे उठने से शांति होगी क्या। माँसाहार हिंसा को बढ़ावा देता है। शेर में कैसे हिंसा आई। यह माँस से है। मैंने इन चीजों पर बोला। तो मैंने सुझाव दिये।



वेद हमारा भेद है, हम वेदन के माहिं । जौन भेद में मैं बसौ, वेदौ जानत नाहिं ॥

कुरान शरीफ कह रहा है 'बेचूना खुदा'। बेचूना अर्थात् निराकार। ईसा मसीह भी कह रहे हैं मेरा आकाशी पिता (स्वर्गीय पिता) मैं उसका इकलौता पुत्र हूँ। अकाशी पिता अर्थात् निराकार। वेद भी निराकार की बात कह रहा है। **जेजे दृश्यम तेते अनित्यम्। जेजे अदृश्यम तेते नित्यम्।** यानि निराकार। हमारे सभी धार्मिक ग्रन्थ भी निराकार तक की बात कहते हैं। भाईयो जह निराकार सत्ता वाला जिसको लोग रब्ब कहते हैं, वह 84 लाख योनियों का रचनहार है परन्तु योनियों को चेतन करने वाली जो ऊर्जा है सुरति है वो कोई और चीज है तभी तो इस सिरजनहार निराकार को कबीर साहिब जी बोल रहे हैं।

मन ही निराकार, निरंजन जानिए ॥

—साहिब कबीर जी

मुक्ति से सबका तात्पर्य निराकार की प्राप्ति। साहिब बन्दगी पंथ किसी की निन्दा नहीं करता। निराकार सत्ता को भी स्वीकार करता है, लेकिन आगे की बात का संकेत भी देता है। संत सम्राट् कबीर साहिब जी ने न्यारा कहा और निराकार सत्ता से आगे कहा। सगुण भक्ति, निर्गुण भक्ति अथवा पाँच मुद्राओं से आगे कहा।

इसके आगे भेद हमारा। जानेगा कोई जाननहारा ॥

कहे कबीर जानेगा सोई। जा पर दया सतगुरु की होई ॥

संतों ने आ कर तीन लोक से आगे परम निर्माण, अमर धाम, सत्य लोक अथवा दसवें द्वार से आगे 11वें द्वार का भेद संसार को दिया।

भाईयों साहिब बन्दगी पंथ के बानी सद्गुरु मधुपरमहंस जी काल पुरुष के काया नाम और अमर लोक के विदेह नाम का अंतर समझा कर संसार को सत्य भक्ति की ओर ले जा रहे हैं। आप कहते हैं बढ़ई वश नहीं कहता—

**“जो वस्तु मेरे पास है वह ब्रह्माण्ड में
कहीं नहीं है।”**

काग पलट हंसा कर दीना। ऐसा पुरुष नाम मैं दीना।

अकह नाम, लिखा न जाई, पढ़ा न जाई।

बिन सतगुरु कोई नाहि पाई ॥

पुस्तक सूची

हिन्दी में

1. परा रहस्या
2. मासिक पत्रिका सत्यकेतु
3. पावन प्रार्थनाएँ
4. सद्गुरु चालीसा
5. वार्षिक डायरी
6. सद्गुरु भक्ति
7. कहाँ से तू आया और कहाँ तुझे जाना रे?
8. सत्संग सुधारस
9. नाम अमृत सागर
10. अमृत वाणी
11. सद्गुरु नाम जहाज़ है
12. चल हंसा सतलोक
13. कोटि नाम संसार में तिनते मुक्ति न होय
14. मूल नाम गुप्त है, जाने बिरला कोय
15. गुरु सुमिरै सो पार
16. तीन लोक से न्यारा
17. सेहत के लिए ज़रूरी
18. सहजे सहज पाइये
19. रोगों से छुटकारा
20. सद्गुरु महिमा
21. भक्ति के चोर
22. अनुरागसागर वाणी
23. भक्ति सागर
24. हरि सेवा युग चार है, गुरु सेवा पल एक
25. सत्य नाम के सुमरते उबरे पतित अनेक
26. काग पलट हंसा कर दीना
27. कस्तूरी कुण्डल बसै मृग खोजे बन माहिं
28. गुरु पारस गुरु परस है
29. गुरु अमृत की खान
30. शीश दिये जो गुरु मिले तो भी सस्ता जान
31. मूल सुरति
32. भृंग मता होय जिहि पासा, सोई गुरु सत्य धर्मदासा
33. मैं कहता हूँ आँखिन देखी
34. गुरु संजीवन नाम बतावे
35. नाम बिना नर भटक मरे
36. रोगों की पहचान
37. यह संसार काल को देशा
38. न्यारी भक्ति
39. साहिब तेरी साहिबी सब घट रही समाय
40. जाप मरे अजपा मरे अनहद भी मर जाए

41. आयुर्वेद का कमाल रोगों के निदान में
42. सुरति समानी नाम में
43. सबकी गठरी लाल है, कोई नहीं कंगाल
44. निन्दक जीवे युगन युग काम हमारा होय ।
45. निराले सद्गुरु
46. कुँजड़ों की हाट में हीरे का क्या मोल
47. जीवड़ा तू तो अमर लोक का पड़ा काल बस आई हो
48. मुझे है काम 'सद्गुरु से जगत रूठे तो रूठन दे'
49. जेहि खोजत कल्पो भये घटहि माहिं सो मूर
50. आत्म ज्ञान बिना नर भटके
51. बिन सतगुरु बाँचे नहीं कोटिन करे उपाय
52. अँधी सुरति नाम बिन जानो
53. सत्यनाम निज औषधि सद्गुरु दर्ई बताय
54. सेहत संजीवनी
55. भक्ति दान गुरु दीजिए
56. मन पर जो सवार है ऐसा ऐसा विरला कोई
57. सत्यनाम है सार बूझौ सन्त विवेक करि
58. रोग निवारक
59. मुक्ति भेद मैं कहौं विचारी
60. "तेरा बैरी कोई नहीं तेरा बैरी मन"
61. सुरति का खेल सारा है
62. सार शब्द निहअक्षर सारा
63. करूँ जगत से न्यार
64. बिन सत्संग विवेक न होई
65. सत्य नाम को जनि कर दूजा देई बहा
66. सुरत कमल सद्गुरु स्थाना
67. अब भया रे गुरु का बच्चा
68. मनहिं निरंजन सबै नचाए
69. सत्यपुरुष को जानसी तिसका सतगुरु नाम
70. आपा पौ आपहि बँध्यो
71. सत्य भक्ति का भेद न्यारा
72. जपो रे हंसा केवल नाम कबीर
73. सत्य भक्ति कोई बिरला जाना
74. जगत है रैन का सपना
75. 70 प्रलय मारग माहीं
76. सार नाम सत्यपुरुष कहाया
77. आवे न जावे मरे न जन्मे सोई सत्यपुरुष हमारा है
78. निराकार मन